

UNIVERSAL  
LIBRARY

**OU\_176168**

UNIVERSAL  
LIBRARY







ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला [संस्कृत ग्रन्थाङ्क ५]

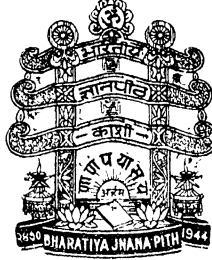
\*\*\*\*\*

अज्ञातनामधेयजैनग्रन्थकृद्विरचिता

# सभाष्या रत्नमञ्जूषा

[ छन्दोग्रन्थः ]

प्रस्तावना-टिप्पण्यादिसमेता



सम्पादकः—

प्राध्यापक हरि दामोदर वेल्णकर, विन्सन महाविद्यालय, मुम्बावती.

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

\*\*\*\*\*

प्रथम आवृत्ति  
१०००

}

आश्विन वीर नि० सं० २४७५  
घि० सं० २००६  
सितम्बर १९४९

}

मूल्य २)  
दो रूपये

# भारतीय ज्ञानपीठ काशी

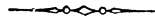
स्व० पुण्यश्लोका माता श्री मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में

तत्सुपुत्र सेठ शान्तिप्रसाद जी द्वारा

संस्थापित

## ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में प्राकृत संस्कृत अपभ्रंश हिन्दी कन्नड तामिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक दार्शनिक पौराणिक साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविधविषयक जैन साहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन, उसका मूल और यथासंभव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन होगा। जैन भंडारों की सूचियों, शिलालेखसंग्रह, विशिष्ट विद्वानों के अध्ययनग्रन्थ और लोकहितकारी जैन साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित होंगे।



ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक ( संस्कृत विभाग )—

प्रा० महेन्द्रकुमार जैन, न्यायाचार्य, जैन-प्राचीन न्यायतीर्थ आदि,

बौद्धदर्शनाध्यापक संस्कृत महाविद्यालय,

हिन्दू विश्वविद्यालय काशी

## संस्कृत ग्रन्थाङ्क ५

प्रकाशक—

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

मन्त्री भारतीय ज्ञानपीठ काशी,

दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस सिटी

मुद्रक— श्रीम प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी ३४१३-२००६।

पनावद  
... कृष्णा ९  
बीर नि० सं० २४७०

सर्वाधिकार सुरक्षित

विक्रम सं० २०००

१८ फरवरी १९४४

स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन



JNANA-PITHA MOORTI DEVI JAIN GRANTHAMALA

SANSKRIT GRANTHA No. 5

# RATNAMANJUSĀ WITH BHĀSYA

BY SOME UNKNOWN JAIN AUTHORS

ON SANSKRIT PROSODY



*EDITED WITH*

A Critical Introduction and Notes

BY

**PROFESSOR H. D. VELANKAR**

WILSON COLLEGE, BOMBAY,

---

*Published by*

**BHARATIYA JNANA-PITHA, KASHI**

*First Edition* }  
*1000 Copies.* }

ASHVIN, VIR SAMVAT 2475  
VIKRAMA SAMVAT 2006  
*September, 1949*

{ *Price*  
Rs. 2/- }

## प्रस्तावना

रत्नमञ्जूषा संस्कृत छन्दशास्त्र विषयक ग्रन्थ है। ग्रन्थकार एक प्राचीन जैन है जिनके नाम और जीवन-विषयक घटनाओं से हम सर्वथा अनभिज्ञ हैं। पिंगल के छन्दशास्त्र के समान यह सूत्रों में लिखा गया है और इसमें आठ अध्याय हैं। विषय प्रतिपादन में भी पिंगल का सादृश्य तथा प्रभाव प्रतीत होता है। पिंगल से सादृश्य तथा उसका प्रभाव प्रतीत होते हुए भी रत्नमञ्जूषा का कुछ रूप में पिंगल से मौलिक भेद भी है। जैन होने के नाते ग्रन्थकार वैदिक छन्दों का व्यवहार नहीं करता। सूत्रों से ग्रन्थकार के जैन होने का तो कोई चिह्न नहीं मिलता; लेकिन टीकाकार के जैन होने से और इस बात को देखकर भी कि इसके कुछ छन्द हेमचन्द्राचार्य को ही ज्ञात है, पिंगल तथा केदार को नहीं, ग्रन्थकार के जैन होने की बात प्रायः निश्चित हो जाती है। टीकाकार का नाम भी हमें अज्ञात है। टीकाकार जैन था इसका प्रमाण हमें प्रस्तावना-श्लोक से मिलता है। प्रायः सभी उदाहरण टीकाकार के ही रचे हुए प्रतीत होते हैं। कुल ८५ उदाहरणों में से ४० उदाहरण मुद्रा द्वारा अपने अपने छन्द का परिचय देते हैं। मुद्रा द्वारा छन्द का परिचय कराना इस बात का प्रतीक है कि उदाहरण इसी मौके के लिए रचे गये थे। यह भी संभव है कि ग्रन्थकार ने दूसरों से भी उदाहरण लिये हों विशेषतः उस दशा में जहाँ कि श्लोक छन्द को सूचित नहीं करते यद्यपि वहाँ भी यह बात सम्भव थी। २.४, पर ग्रन्थकार ने शाकुन्तल ( १.३३ ) से उद्धरण लेकर दिया है, और ६.२७ पर भास के प्रतिज्ञा योगन्धरायण (२.३) से। अन्य उद्धरण भी निम्नलिखित हो सकते हैं : ३.७ ( कर्ण वैकर्तन ) ; ४.२०.२ ( .....ग्रताः सेनापतिः ) ; ५.५ ( सेनापतिपुत्री ) ; ५.२० ; ५.२८ ; ५.३४ ( केतुमान ) ; ६.१२ ; ६.२१ ; ५.६.२९ ( जहाँ वरुचि दीवारिक द्वारा नन्द को अपने आने की सूचना देता है ) ; ७.२९ ; ७.३२ ( स्कन्द की स्तुति ) तथा ७.३३ निम्नलिखित श्लोक स्पष्ट रूप से जैन धर्म का उल्लेख करते हैं :— २.५, १५ ; ३.१९ ; ४.९ ; ५.८, १७, २९, ३० ; ६.३, ६, १०, १३, १४ ; ७.२६, २७, ३०। इनमें से नवों श्लोक अपने छन्द का उल्लेख नहीं करता और सम्भवतः छन्द के उदाहरणार्थ इसकी रचना नहीं हुई दिखती। करीब २५ उदाहरण सामुद्रिक का उल्लेख करते हैं और प्रायः सब में मुद्रा द्वारा ही छन्द प्रतीत कराया है। सम्भवतः ये उदाहरण स्वयं टीकाकार के रचे हुए प्रतीत होते हैं।

टीकाकार तीन-चार बार ग्रन्थकार का उल्लेख करता है लेकिन उन ग्रन्थकार के नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं करता। ४.१, पर उनको केवल आचार्य नाम से ही याद करता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है रत्नमञ्जूषा विषयक प्रतिपादन में साधारण रूप से पिंगल का अनुसरण करता है और विषय को (वैदिक छन्दों को छोड़कर) ८ अध्यायों में बाँटा है। प्रथम अध्याय में ग्रन्थकार ग्रन्थ में प्रयुक्त चिह्नों तथा पारिभाषिक शब्दों का निर्देश करता है। द्वितीय अध्याय में अर्थों (१.१३) गीति (१४) आर्यागीति (१५) गलित्तक (१६) तथा उपचित्रक वर्ग के अर्थसम वृत्तों का लक्षण-प्रतिपादन करता है। तृतीय अध्याय में वैतालीय १.९ और मात्रासमक वर्ग के मात्रा-छन्दों का। अन्त में पिंगल के (४.४८-५२) समान गीत्य आर्या, विशिखा और कुलिक का। लेकिन अध्याय का अन्त मात्रा वृत्त—नृत्यगीत तथा नटकरण—से करता है। इन अन्त के दो छन्दों का लक्षण-निर्देश, जहाँ तक मुझे मालूम है, हेमचन्द्राचार्य ही करते हैं, अन्य कोई नहीं। चतुर्थ अध्याय में ग्रन्थकार विषम वर्ण के—उद्गता (१-६) दामाधारा वा पदचतुर्ध्व (७-१२) तथा अनुष्टुभचक्र (११-२०) का लक्षण-प्रतिपादन

तथा उदाहरण देता है। (अध्याय चतुर्थ की प्रस्तावना देखें)। अध्याय पाँच से सात तक समस्त वर्णवृत्तों के लक्षण तथा उदाहरण दिये गये हैं। पिंगल के समान ग्रन्थकार गायत्री वर्ग से—जिसमें चार चरण तथा प्रत्येक चरण में ६ शब्द होते हैं—शुरू करता है लेकिन निम्नतर वर्ग के उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा तथा सुप्रतिष्ठा को बिलकुल छोड़ देता है। (अध्याय प्रथम की प्रस्तावना तथा २०-२४ सूत्रों को देखें)। पाँचवें अध्याय के प्रारम्भ में ग्रन्थकार वर्णवृत्तों को तीन वर्गों—समान, प्रमान तथा वितान—में बाँटता है। पाँच से सात तक प्रतिपादित छन्द वितान के भीतर आते हैं। पाँचवें अध्याय में सूत्र १-१२ की टिप्पणी में जैसा मैंने कहा है कि २१ वर्णवृत्तों के इस प्रकार के विभाजन में ग्रन्थकार अकेला ही है। पिंगल तथा अन्य छन्दशास्त्र के रचयिता इस तीन तरह के विभाजन अनुष्टुभ वर्ग में ही सीमित करते हैं। अनुष्टुभ वर्ग के छन्द के प्रतिपादन के समय उनका निर्देश करता है। और विषम वृत्तों के प्रारम्भ में—जिसमें अनुष्टुभ वक्त्र का अन्तर्भाव होता है—हेमचन्द्राचार्य भी इसके अपवाद नहीं। ग्रन्थकार ८५ वर्णवृत्तों का लक्षण निर्देश करता है। इसको गायत्री से उद्धृति तक २१ वर्ग में बाँटा गया है। ८५ में से करीब २१ से पिंगल और केदार दोनों अपरिचित हैं। ग्रन्थकार का यह विभाग हेमचन्द्राचार्य से पुरस्कृत जैन परम्परा को ही ज्ञात है। पिंगल के करीब १६ छन्द भी छोड़ दिये गये हैं।

लेकिन दोनों में सबसे महत्त्वपूर्ण भेद चिह्न विषयक है। पिंगल ने वर्णवृत्त में छन्दबोध के लिये त्रिक का प्रयोग किया है। पिंगल में आठ व्यंजनों के आठ चिह्न हैं। ग्रन्थकार त्रिक को स्वीकार करते हैं लेकिन चिह्न बिलकुल बदल दिये हैं। ग्रन्थकार ने चिह्नों की दो रीतियाँ स्वर रीति और व्यंजन रीति प्रस्तुत की हैं। इसके अतिरिक्त ग्रन्थकार ने आठ त्रिक में दो द्विक अपनी ओर से मिलाये हैं, (त्रिक तीन वर्णों का पुंज है तथा द्विक दो वर्णों का)। इस प्रकार अन्तस्थ य र ल व इनके चिह्न स्वरूप प्रस्तुत किए गये हैं। ग्रन्थकार न और म का प्रयोग क्रमशः दीर्घ और लघु वर्णों के लिये करता है, जिससे हमें पिंगल के नगण और मगण की याद आती है। इनका प्रयोग करते समय ग्रन्थकार के मन में पिंगल के नगण-मगण स्पष्ट रूप से विद्यमान हैं। पिंगल के सटश ग्रन्थकार भी मात्रागणों में चतुर्मात्रा वर्ग का ही उल्लेख करता है। मात्रावृत्तों के लक्षण-प्रतिपादन के ही लिये चतुर्मात्रा वर्ग का प्रयोग होता है। संस्कृत में मात्रावृत्तों की संख्या बहुत थोड़ी है और इनमें चतुर्मात्रा-वर्ग ही लिये गये हैं, (द्वितीय अध्याय की प्रस्तावना देखें)। चतुर्मात्रा-वर्ग लघु और दीर्घ वर्णों के विभिन्न प्रयोगों के आधार पर पाँच प्रकार का है। तीन प्रकार के तो त्रिक में आ जाते हैं। त्रिक के चिह्न भी इनके लिए प्रयुक्त होते हैं। शेष दो में से एक तो द्विक है, दूसरे का कोई विशेष चिह्न नहीं है। ग्रन्थकार इसको दो चिह्नों द्वारा प्रस्तुत करता है।

भाष्यसहित रत्नमञ्जूषा के इस संस्करण को तैयार करने में ए और बी नामक दो पाण्डुलिपियों (गवर्नमेण्ट ओरियण्टल लायब्रेरी, मैसूर) का उपयोग किया गया है। ए का नं० ८७१ तथा बी का १०२५ है। दोनों कन्नड़ में भोज पत्र पर डूई लिखी हैं। प्रत्येक में २५ पत्र हैं; जिनका आकार क्रमशः १० ३/४ × २ और १३ ३/४ × १२ इंच है। दोनों के पृष्ठ क्रमशः ९ और ७ पंक्ति के हैं और प्रत्येक लाइन में क्रमशः करीब ५२ और ७१ वर्ण हैं। दोनों पाण्डुलिपियाँ अपूर्ण हैं। ए में आठवें अध्याय का अधिकांश भाग है लेकिन बी, आठवें के १५ सूत्र तक ही है। ए. भाष्य में सत्तरह (१७) सूत्र के बाद नहीं मिलता लेकिन अन्त में ११ श्लोक ऐसे मिलते हैं जो लेखक द्वारा उद्धृत-से प्रतीत होते हैं। इनमें स्वभावतः ६ प्रत्यय पाये जाते हैं। ११ वें श्लोक में खण्डमेरु प्रस्तार के रचयिता पुष्पागचन्द्र का उल्लेख है। यह ग्रन्थ वर्णवृत्त विषयक है।

दोनों पाण्डुलिपियों में बहुधा लघु वर्णों के लिये दीर्घ वर्णों का प्रयोग किया गया है। बिरले वक्त

दीर्घ वर्णों से लिये। दोनों ही में लघु वर्णों का भी प्रयोग समान रूप से है। इस त्रुटि की ओर मैंने समय समय पर ध्यान दिलाया है, साथ ही सही वर्ण भी दे दिये हैं। जहाँ जहाँ वर्ण छूटे हैं वहाँ वर्ण के पीछे मैंने प्लस (+) चिह्न देकर उसको ब्रेकेट में रख दिया है।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी तथा डा० हीरालाल जैन का मैं बहुत आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे इस दुर्लभ ग्रन्थ के सम्पादन का अवसर दिया।

१०/२ शास्त्री हॉल  
बम्बई ७  
२ जून, १९४९।

ह. दा. वेलणकर

## प्रकाशन-व्यय

३२०) छपाई १० फार्म	१७५) व्यवस्था
१५०) कागज	१००) चित्रकवर
२००) जिल्द	२००) भेंट आलोचना
१६०) सम्पादन	१००) विज्ञापन
१२५) प्रूफ शोधन	४००) कमीशन
	<hr/>
	२०००)
१००० प्रति छपी	मूल्य २)

## रत्नमञ्जूषा with भाष्य

### INTRODUCTION

Ratnamañjūṣā is a work on Sanskrit metres written by an old Jain author, whose name and personal history are wholly unknown. The work consists of Sūtras and contains 8 Adhyayas like Piṅgala's Chandas Śāstra. The treatment also shows great similarity with and influence of Piṅgala's work. Yet in some respects Ratnamañjūṣā materially differs from Piṅgala. The author, being a Jain, naturally drops the Vedic metres. As a matter of fact, there is no indication in the Sūtras themselves about the religion of their author. Yet the fact that their commentator is a Jain and that some of the metres defined in them are known only to the great Jain author Hemacandra, but not to Piṅgala or Kedāra, makes it almost certain that the author of the Sūtras was very likely a Jain. The name of the commentator is also unknown. He was a Jain as is clear from the introductory stanza. Most of the illustrations seem to have been composed by the commentator himself. About 40 out of a total of 85 illustrations contain the name of the metre artificially introduced by way of Mudrā. This is a pretty clear indication of their being composed for the occasion itself. It is however possible that he may have quoted from other sources, especially in those cases where the stanzas do not contain the name of the metre even when it was possible to introduce it. At 2. 4, he has quoted from the Śākuntala (I. 33) and at 6. 27 from Bhāsa's Pratijñāyugaṅḍharāyaṇa (II 3). The other possible quotations may be 3. 7 (Karna Vaikartana); 4. 20. 2 (devair vṛtah senāpatih); 5. 5 (senāpatiputrī); 5. 20; 5. 28; 5. 34 (ketumān); 6. 12; 6. 21; 6. 29 (Vararuci announcing himself to Nanda through the doorkeeper); 7. 22; 7. 32 (praise of Skanda) and 7. 33. The following stanzas contains a clear reference to Jain religion :— 2. 5, 15; 3. 16; 4. 9; 5. 8, 17, 29, 30; 6. 3, 6, 10, 13, 14; 7. 26, 27, 30. In 9 of these, the name of the metre is not introduced and they were probably not composed for the purpose of mere illustration. About 25 of the illustrations contain references to the

Sāmudrika and in most of these the name of the metre is introduced artificially, suggesting that they were probably composed by the commentator himself.

The commentator has an occasion to refer to the author of the text on three or four occasions, but in no place does he mention his name. On 4.1, he calls him an *ācārya* merely.

As said above Ratnamañjūṣā broadly follows the plan of Piṅgala and distributes the same material (except Vedic metres) over 8 Adhyayas as follows: In the first Adhyaya, he explains the symbols and technical terms employed by him in this book. In the second, he defines the Āryā (1-13) the Gīti (14) the Āryā Gīti (15), the Galitaka (16) and then the Upacitraka group of the Ardhasama Varṇa Vṛttas. He devotes the third Adhyaya to the Vaitāliya (1-9) and the Mātrāsamaka groups of the Mātrā Vṛttas (10-17), giving at the end Gītyāryā, Viśikhā and Cūlikā (18-20) just like Piṅgala ( 4.48-52 ), but concluding the chapter with Nṛtyagati and Naṭacarāṇa, both of which are pure Mātrā Vṛttas. These last two are defined, so far as I know, only by the great Jain writer Hemacandra and not by any one else. In the fourth Adhyaya the three groups of the Viṣama Varṇa Vṛttas, namely the Udgatā (1-6), the Dāmavārā or the Padacaturūrdhva (7-12) and the Anuṣṭubh Vaktra (11-20) groups are defined and illustrated. See the introductory note to Adhyaya IV. In Adhyayas five to seven, all the Varṇa Vṛttas are defined and illustrated. Like Piṅgala, our author begins with the Gāyatrī class whose metres contain 6 letters in each of their four lines, neglecting the metres of the lower classes i.e. Uktā, Atyuktā, Madhyā, Pratiṣṭhā and Supratiṣṭhā altogether. See note on Adhyaya 1, Sūtras 20-24. At the beginning of the fifth Adhyaya, our author broadly divides all these Varṇa Vṛttas under three heads namely Sāmāna, Pramāṇa and Vitāna. The metres actually defined in Adhyayas 5 to 7 come under the third head i.e., Vitāna. As explained in my note on 5. 1-12, our author stands alone in thus dividing the Varṇa Vṛttas of all the 21 classes. Piṅgala, and following him, all the other writers, including the Jaina Hemacandra, restrict this threefold division to metres of the Anuṣṭubh class alone and mention it on the first occasion when they treat of the metres of the Anuṣṭubh class i.e., at the commencement of the Viṣama Vṛttas which include the Anuṣṭubh Vaktra group. Our author defines about 85

**Varṇa Vṛttas** belonging to the 21 classes from Gāyatri to Utkṛti. Out of these, not less than 21 are unknown to Piṅgala and Kedāra, but known only to the Jain tradition represented by Hemacandra. On the other hand, about 16 metres defined by Piṅgala are dropped in the Ratnamañjūsā.

But the most important point of difference between Piṅgala and Ratnamañjūsā is the use of symbols. Piṅgala has devised 8 Trikas (groups of three letters) for the purpose of scanning a metrical line of the Varṇa Vṛttas. He has given them eight symbols consisting of eight consonants. Our author has retained the Trikas but changed their symbols completely. He has put forth a double system of symbols, one consisting of consonants and another of vowels alone. He has also added 4 Dvikas (groups of two letters) to the 8 Trikas, giving them the symbols consisting of the 4 semivowels *ya, ra, la, and va*. He employs the symbols *na*, and *ma*, (i. e. consonants *n* and *m*) for short and long letters respectively; but here he has clearly the *nagaṇa* and the *magaṇa* of Piṅgala in his mind. Like Piṅgala, he too mentions only the Caturmātra group among the Mātrā Gaṇas. This group alone is employed in defining the Mātrā Vṛttas. Really speaking, the number of Mātrā Vṛttas in Sanskrit is very restricted and in them only the Caturmātra groups are prescribed as explained in my introductory note to the second Adhyaya. The Caturmātra group is of five kinds according as short and long letters in different order are employed in them. Three of them are already included in the Trikas whose symbols are also used for them. Of the remaining two, one is a Dvika, while the other has no special symbol to represent it and is prescribed with the help of two symbols by our author.

In preparing the edition of the Ratnamañjūsā with the Bhāṣya two manuscripts called **A** and **B** have been used. Both of them are from the Government Oriental Library, Mysore. The first i. e., **A** is No. 871, while the second i. e., **B** is No. 1025. Both are written in the Kannaḍa characters and on palm leaves. **A** as well as **B**, both 25 folios each the size of which is respectively  $10\frac{1}{4} \times 2$  and  $13\frac{3}{4} \times 1\frac{1}{2}$  inches. Their pages respectively contain 9 and 7 lines with about 52 and 71 letters in a line. Both the mss. are incomplete. **A** contains the greater part of the eighth chapter while **B** contains it only upto the end of the 15th Sūtra of it. **A** breaks off in the Bhāṣya on the 17th Sūtra but gives at the end some 11

stanzas which look like a quotation from some other work written out by the scribe himself. They naturally bear on some of the 6 Pratyayas. In st. 11 an author called Punnāgacandra is mentioned as the author of the Khaṇḍameru Prastāra of the Varṇa Vṛttas.

Both the manuscripts agree in frequently writing short letters for long and rarely also long letters for short ones. The mistakes are generally obvious. Yet I have indicated all of them as they are, in the following edition putting (within brackets) the correct letter or letters, immediately after the wrong ones. When a letter is dropped, it is indicated by means of a plus + sign placed behind the letter which is then put within the brackets.

I feel greatly obliged to the Bhāratiya Jñānapīṭha, Kashi and Dr. H. L. Jain of Nagpur for giving me an opportunity of editing this rare work on Sanskrit metres.

10/2 Shastri Hall, Bombay 7,  
2nd June, 1949.

H. D. Velankar.



नमः सिद्धेभ्यः ।

# सभाष्या रत्नमञ्जूषा

## [ प्रथमोऽध्यायः ]

यो भूतभव्यभवदर्थयथार्थवेदी देवासुरेन्द्रमुकुटाक्षितपादपद्मः ।  
विद्यानदीप्रभवपर्वत एक एव तं क्षीणकल्मषगणं प्रणमामि वीरम् ॥

मायाका ॥१॥

माया का इत्यस्य सर्वगुरुत्रिकस्य आकारः संज्ञा भवति ककारो वा 'स्वरोऽन्त्यस्तदन्तस्य व्यञ्जनं च' इति वचनात् । 'सूचिमुली पा' ( ५-७ ) इत्याकारस्य, 'भद्रविराड् यीरे कीरे' ( २-२० ) इति ककारस्य । अत्रैव माया इति गुरुद्वयस्य यकारः संज्ञा भवति, व्यञ्जनं च तदन्तस्येति वचनादेव । यीपृनीति । पुनश्च अत्रैव मा इति गुर्वक्षरस्य मकारः संज्ञा भवति, व्यञ्जनं च तदन्तस्येति वचनादेव । भ इति अक्षरे एकस्मिन्नप्याद्यन्तवद्भावात् । संयोगे नपिमिति । अत्राह— नन्वाकारादयस्तेषामेवाक्षराणां संज्ञा, यथा वृद्धिरादैच् इति वृद्धिसंज्ञा तेषामेवाक्षराणाम् इति; न; तद्रूपसंज्ञाकरणे प्रयोजनाभावात् तन्मात्राणां यान्यत्र तेषु त्रिकेष्वक्षराण्युपदिष्टा (+नि) तेषां संज्ञाकरणानि प्रयोजनमिति तन्मात्राणां सर्वांश्चां संज्ञास्ताः प्रत्यवगन्तव्याः । अथवा 'शास्त्रिणी मास्ये दि' (+इ) त्यत्र ( ५-३५ ) छेदवचनं शापकमन्येषाम् इति तन्मात्राणां संज्ञा इति । यदि तेषामेव संज्ञा माया का इति छेदवचनमनर्थकं भवति, तस्मात्तन्मात्रासंज्ञाकरणमेव ॥

नरौ चे ॥२॥

नरौ चे इत्यादिलघुत्रिकस्य एकारः संज्ञा भवति चकारो वा । 'तनुमप्या रो' ( ५-५ ) इत्येकारः । 'शिलण्डि (+ नी) वा' ( ५-८ ) इति चकारः । अत्रैव नरौ इत्यादिलघुत्रिकस्य रकारः संज्ञा भवति । 'भद्रविराड् यीरे कीरे' ( २-२० ) इति । पुनश्चात्रैव न इति लघ्वक्षरस्य नकारः संज्ञा । संयोगे नपिमिति ( १-११ ) ॥

## लालितौ ॥३॥

लालिताविति मध्यलघुत्रिकस्य औकारः संज्ञा तकारो वा । 'चगला गर्धासेनौ' ( २-७७ ) । पुन-  
श्चात्रैव लावि (ली) रथन्तलघुद्विकस्य लकारः संज्ञा । 'उपचित्रकं पि(पी)वौ लुपे' इति ( २-१७ ) ॥

## विवपी ॥४॥

विवपी इत्यन्तगुरुत्रिकस्य ईकारः संज्ञा पकारो वा । पुनश्चात्रैव विव इति लघुद्विकस्य वकारः  
संज्ञा । 'उपचित्रं(व+कं) पि(पी)वौ लुपे ( २. १७ ) इति ॥

## शाशाश ॥५॥

शाशाश इत्यन्तलघुत्रिकस्य अकारः संज्ञा शकारो वा । 'इन्द्रवज्रा शरे' ( ५-२७ ) इति ॥

## विषेषु ॥६॥

विषेष्विति मध्यगुरुत्रिकस्य उकारः संज्ञा षकारो वा । 'उपचित्रकं पि(पी)वौ लुपे' ( २-१७ ) इति ॥

## सखसु ॥७॥

सखसु इत्यादिगुरुत्रिकस्य ऋकारः संज्ञा सकारो वा । 'हरिणीप्लता वृषा ह्रसाविति' ( २-२३ ) ॥

## हहहि ॥८॥

हहहि इति सर्वलघुत्रिकस्य हकारः संज्ञा हकारो वा न(+हह)हि इति ॥

अष्टौ स्वरास्त्रिणाणामष्टौ च व्यञ्जनानि संज्ञाः स्युः ।

द्विकसंज्ञास्तु यरलवा गुरुलघुसंज्ञौ मनौ ज्ञेयो ॥

## स्वरोऽन्त्यस्तदन्तस्य ॥९॥

यस्य त्रिकस्य यः स्वरोऽन्त्यः स तस्य<sup>१</sup> संज्ञा भवति । तथा चैवोदाहृतम् । अन्त्यग्रहणात् आदिमध्य-  
स्थाः स्वरा अक्षराणां द्विकानां वा संज्ञा न भवति । तस्मात् आकारादिः<sup>२</sup> त्रिकस्य प्रत्यायको भवति ॥

## व्यञ्जनं च ॥१०॥

यस्मिन्नक्षरे यद् व्यञ्जनं वर्तते तच्च तदक्षरान्त्य(न्त)स्य त्रिकस्य द्विकस्य अक्षरस्य वा प्रत्यायकं  
भवति, तथा चैवोदाहृतम् । अन्त्यग्रहणं वर्तते वा न वा ? किं जात.(तम्) । यदि वर्तते; अनन्त्य-  
त्वात् द्विकस्य अक्षरस्य ग्रहणं न संभवति । अथ निवृत्तम्; 'इन्द्रवज्रा शरे' ( ५-२५ ) इत्यत्रायं शकारः  
त्रिकस्य आद्यो मध्यमोऽन्त्यो वा इति न ज्ञायते इति । भवतु वर्तते । ननु च उक्तमनन्त्यत्वात् द्विकस्य अक्ष-  
रस्य वा ग्रहणं न संभवति इति । नैष दोषः । वचनाद्भवति । कथम् ? यदाद्यं मध्यमं वा व्यञ्जनं गृहीत्वा  
संज्ञामावेन संव्यवहरति । 'संयोगे नपिम्' ( १-११ ) 'यीगुनि' ( १-२६ ) ( +इ ) ति, तच्चज्ञापयति  
अनन्त्यमपि व्यञ्जनं क्वचित् तदन्त्यस्य संज्ञा भवतीति । अथवा भवतु निवृत्तमिति । ननु चोक्तं इन्द्रवज्रा  
शरे इति शकारः त्रिकस्याद्यो मध्यमोऽन्त्यो वा इति न ज्ञायते इति । तत्र को दोषः ? यद्याद्यः गुरोरेकस्य ग्रहणं  
भवति । अथ मध्यमो गुरु द्वयस्य । नैष दोषः । यद्येको गुरुद्वयं च इष्टमभविष्यत् असन्देहकम् अकारं वा यकारं

वा अकरिष्यत् । तदकरणाद् वर्यं प्रतिजानीमहे अन्त्य एव नाद्यो ( +न ) मध्यम इति । 'अथवा व्याख्यानतो विद्योषप्रतिपत्तिर्न हि संदेशदलक्षणम्' इति लक्षणसद्भावादन्त्य एव इति व्याख्यास्यामः ॥

### संयोगे नपि म् ॥११॥

द्रयोर्बहूनां वा समागमः संयोगः, तस्मिन् परतः पूर्वो नपि लघुरपि म् भवति गुरुर्मवतीत्यर्थः ॥

यत्नस्तु महान् कार्यः संसारमहार्णवान्तगमनाय ।

इन्द्रियगजप्रवारणपरेण विदुषा सदा भाव्यम् ॥

अपिशब्दात् संयोगे परतः कदाचिल्लघुरेव भवति । तत्कथम् ?

धनं प्रदानेन श्रुतेन कर्णो हस्येन वाच्यं प्रद्यमेन कायम् ।

शौचेन वृत्तं दिवसं हितेन नियोज्य यो जीवति जीवितः सः ॥

अत्र श्रु इत्येतरिमन् परतः पूर्वो नकारो लघुरेव भवति । अनेनैव अपिशब्देन अन्येऽपि विकल्पाः कल्प्याः । एको गुरुः द्वौ लघुं(घू) भवतः इत्येवमादयः । पादेत्यत्र (!) द्वौ मौ चत्वारो नो भवन्ति ततो नित्याख्यां लभन्ते ॥

### अन्ते च ॥१२॥

नपि म् इत्यनुवर्तते । पादान्ते यो लघुः स गुरुर्भवति ॥

### नार्याद्ययुक्पादे ॥१३॥

आर्यायाः अयुक्पादयोरन्ते वर्तमानो लघुर्गुरुर्न भवति, लघुरेव भवति । एतयोरपि सूत्रयोः स एव दृष्टान्तः ॥

### संख्या ददादिः ॥१४॥

एकादिकायाः संख्याया ददा इत्येवमादीनि संज्ञा भवन्ति ॥

### पूरणे ण् ॥१५॥

पूरणं तत्त्वतिथमित्यर्थः । तत्कथं दूण् ॥

### न वा ॥१६॥

णकारेण विना दादीनि वा संख्यापूरणवाचीनि भवन्ति । तत्कथं 'शालिनि(नी) माख्ये दि' ( ५-३५ ) ॥

### पादः ॥१७॥

वृत्तस्य चतुर्थोऽंशो(शः) पाद इति ज्ञेयः ॥

### छेद्ः ॥१८॥

श्रुतिप्रमगस्थितिः ॥

पदे से ॥१९॥

सन्धिविकारे त्यगिमभ्ये ॥

पादे गायत्री दृअक्षरा ॥२०॥

यस्य छन्दसः पादे षडक्षराणि भवन्ति सा गायत्री नाम । उत्तरत्रोदाहरिभ्यामः । अर्धहिताकरणम-  
सम्बेदाथम् ॥

दघ (द) वृद्धाः उष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुभः ॥२१॥

दददृद्धाः एकैकाक्षिका इत्यर्थः । येषां छन्दसां गायत्रीपादात् एकैकाक्षराधिकपादाः ॥

जगतीशक्यैष्टिधृतयोऽन्तश्च ॥२२॥

जगती अतिजगती शकरी अतिशकरी अष्टिः अत्यष्टिः धृतिः अतिधृतिः इत्येताः दंष्ट्रा भवन्ति ।  
कथमिदं विनायते जगती अतिजगती शकरी अतिशकरी अष्टिः अत्यष्टिः धृतिः अतिधृतिः एव(वं) क्रमो भवति  
न पुनः जगतीशक्यैष्टिधृतिअतिजगती(+अति)शकरीअत्यष्टिअतिधृति इति ? उच्यते । धृतिरित्यधिकृत्य  
'कुमुमितलतावेष्टिता मालिनये' (७-२) इति वचनात् । कथं तेन एतदुपलभ्यते । यदि पश्चादुक्तः क्रमः  
स्यात् धृतिः प्रञ्चदशाक्षरा स्यात् । धृती 'मालिनये' इति अष्टादशाक्षरविन्यासलक्ष(+ण) वचनममुक्तं स्यात् ।  
ततोऽवगम्यते पूर्वोक्तं एव क्रम इति ॥

कृतिः ॥२३॥

कृतिरिति अतिधृतिपादात् एकाक्षराधिकपादास्य कृतिर्नाम भवति ॥

प्राक्सिमभ्युदक्ष ॥२४॥

कृतिपादात् एकैकाक्षराधिकपादाः प्रकृतिः आकृतिः विकृतिः संकृतिः अभिकृतिः उत्कृतिः इत्येवं  
संज्ञाः भवन्ति ॥

दि(दी) नो ग् ॥२५॥

दि(दी) इति चतस्र इत्यर्थः । न इति मात्रा इत्यर्थः । चतस्रणां मात्राणां ग् इत्येषा  
संज्ञा भवति ॥

यीषृनि ॥२६॥

माया, विवपी, पिपेयु, सत्वस्र, नहहदि, इत्येवं गुहभूताभिः पृथग्भूताभिश्च मात्राभिः पञ्चविधा  
गो भवन्ति ॥

इति रत्नमञ्जूषायां छन्दोविधित्वां भाष्यतः प्रथमोऽध्यायः ॥

## द्वितीयोऽध्यायः

अर्धे ॥१॥

अर्धे इत्यधिकृत्य । इत उत्तरं यल्लक्षणमभिधास्यामः तदर्धे इति वेदितव्यम् । तत्कथम् ? आर्या  
ऽगोऽर्धं च । अर्धे इत्युपस्थितं भवति । आ कुतोऽयमधिकारः । आ अध्यायपरिसमाप्तेः ॥

आर्या दृगोऽर्धं च ॥२॥

आर्या नाम सा जातिर्भवति यस्या अर्धे दृगः गर्धं च भवति । कथम् ?

नवभिर्द्वारैरशुचिस्त्राविण्यां विविधदुःखकारिण्याम् ।

नार्या नार्यो रमते नार्यो रमते त्वनार्याणाम् ॥

युगु ॥३॥

तस्या आर्यायाः पूर्वार्धापरार्धयोः उकार(रः) मध्यगुहत्रिकस्त्रमगण एव भवति न विषमगणः ॥

दृण् ॥४॥

षष्ठो गणः उकारः मध्यगुहत्रिकः एव भवति नाग्यः ॥

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः ।

चीनांशुकमिव केतोः प्रतिघातं नीयमानस्य ॥

नि चेद् दृण् पदादिः ॥५॥

षष्ठो गणो यदि (+न)इहहि भवति तदा द्वितीयो लघुः पदादिः भवति ॥

संखारेऽखारस्त्वं परीक्ष्य बहुधापि विपुलमतिभिर्निह ।

मुनिचरिते पथ्यात्मा नेयः परमं पदमिच्छद्भिः ॥

पाञ्चयोगिकोऽयमुदाहरणश्लोकः ॥

दृण् दृण् ॥६॥

नि जे(चे)दिस्थनुवर्तते, पदादिरिति च । यदि सप्तम्या (मो) गणः सर्वलघुर्भवति तदा प्रथमलघुः  
पदादिर्भवति । दृण् दृण् नि जे(चे)द्दृण् पदादिः इत्येव द्वयपूर्वस्य ( इत्येतद् द्वयं पूर्वस्य ) एव लक्षणं  
परार्धे 'दृण् नेव दृण्' इति वचनात् ॥

परेषु अयं विशेषोऽभिधास्यते ।

परार्धे दृण् ॥७॥

यदि परार्धे पञ्चमो गणः सर्वलघुर्भवति तदापि प्रथमलघुः(घुः) पादादिर्भवति ॥

नेव दृण् ॥८॥

अपरार्धे षष्ठो गणः एक एव लघुर्भवति ॥

## दिगयुक्पादा पथ्या ॥६॥

दि(दी)ति त्रयः गिति गणाः । यस्याः आर्यायाः अयुक्पादः त्रिगणो भवति सा पथ्या नाम ॥९॥

## विपुलान्या ॥१०॥

यस्या आर्याया अयुक्पादः त्रिगणो न भवति, भवति सा विपुला नाम ॥

विपुलागमधौतमतीनामपि पूर्वकृतः र्भवस्यानाम् ।

न विधेयतां समुपयान्ति प्रबला इन्द्रियरथाश्वाः ॥

## चपला गर्धात् ते नौ ॥११॥

यस्या आर्याया आदितोऽर्धगणात् परतः 'लालितौ, नरोचे, न, लालितौ,' इत्येतत् लक्षणं भवति भवति चपला नाम ॥

रोगा बहुप्रकाराः सदा वृद्धन्ति चपलायते मूर्तिः ।

मरणं च भावि नित्यं किमत्र राग्यं जगति शिष्टम् ॥

## मुखे तत्पूर्वा ॥१२॥

पूर्वाधे इत्यर्थः । यदि पूर्वाधे एतल्लक्षणं भवति, भवति मुखचपला नाम । तद्यथा—

प्रस्वेदबिन्दुचित्रं विमुक्तबन्धनसुभालिश्रुतकेशाम् ।

शंसति मुखं तरुण्याः वृत्तामपि कन्दुकक्रीडाम् ॥

## जघने च ॥१३॥

जघन इत्यपरार्धे इत्यर्थः । यद्यपि अरार्धे एव एतल्लक्षणं भवति जघनचपला नाम ॥

कर्णनिहित(तः) प्रियङ्गुः क्रिमिरागैः पदि च पिण्डतो वर्णः ।

वेणीकृताश्च केशा न्विभान्ति बालातपे नार्यः ॥

## पूर्णश्चेद् दूण् गीतिः ॥१४॥

परार्धे 'नेव द्( दू )ण्' इत्युक्तं सा तथा अभूत्वा यदि चतुर्मात्रा भवन्ति, भवति गीतिर्नाम ॥

देवेन्द्रोऽपि न दुःखत्यागी तिर्यङ्मानुष्यनरंघु ।

का तत्र जन्सुगु कथा सतताहितविविधदुःखभावेणु ॥

यदा पूर्णास(र्णस्त)दा 'दूण्' 'नि जे(चे)दाण् पदादि' रित्येतद्द्वयमुपतिष्ठते । ततः षष्ठः विपेणु इति वा नहर्हृदि इति वा भवति । यदा नहर्हृदि भवति तदा द्वितीयः पदादिर्भवति ॥

## दृ(दृ)ण् चार्यागीतिः ॥१५॥

यद्यष्टमो गणः पूर्णो भवति, भवति आर्यागीतिर्नाम ॥

जगति जराकरुमरणाद्गीता जिनपुङ्गवं भयध्वं मनुजाः ।

तद्गुणविशेषवशात् आर्या गीतिभिरभिष्टुवन्ति यमनिष्ठम् ॥

**गलितकं प्रतिपादं दुग्धं च ॥१६॥**

चतुर्षु पादेषु पञ्चगणा गणार्धं च भवति, भवति गलितकं नाम ॥

न स्मरति किं स्वदीरितशरभासुरतानाम् । अटकीषु चोग(म)केसरिद्यरमा सुरतानाम् ।

अथवाग्दकस्य सृष्ट्या निष्ठातदन्तस्य । प्राप्ता बोधाय शरजिष्ठा तदन्तस्य ॥

इत उत्तरं आ अ ध्यायपरिसमाप्तेः अर्धसमानि भवन्ति । पूर्वार्धे परार्धे 'तुत्यविन्यासः'त् ॥

**उपचित्रकं पि(पी)बौ लुपे ॥१७॥**

यद्यर्धे विवपी विवपी विव लालितौ, लालि विषेषु विषेषु नरौचे इत्येतल्लक्षणं भवति, भवत्युप-  
चित्रकं नाम ॥

उपचित्रकमक्षयसद्भनेः काञ्चनविद्रुमरत्नवरैश्च ।

कुलमशु दग्धितया प्लुतं दैन्यमुपैति दिवेव शशाङ्कः ॥

**द्रुतमध्या लुपे ह्रुपे ॥१८॥**

यदि लुपे ह्रुपे (+इ) ति लक्षणं भवति, भवति द्रुतमध्या नाम ॥

भोगवती सुदती द्रुतमध्या । बलिपलितैर्विकृतेषु जरेयम् ।

एत तगोवनमाशु मनुष्याः । विगतजरं पदमाप्नुमुदात्तम् ॥

**वेगवती लुपे लुपे ॥१९॥**

यदि लुपे लुपे इति लक्षणं भवति, भवति वेगवती नाम ॥

बलिभिः पलितैश्च विकीर्णां शीघ्रमुपैति जरा मरणाय ।

सितफेनतरङ्गतताद्या सन्ततवेगवतीह नदीव ॥

**भद्रविराट् यि(यी)रे कि(की)रे ॥२०॥**

यदि यि(यी)रे कि(की)रे इति लक्षणं भवति, भवति भद्रविराट् नाम ॥

केयूरमुखैर्विभूषितसक्तेजो भद्रविराण्णरेड् श्(सु)रेच् वा ।

भृत्वापि स एव याति पापात् चाण्डालश्चष्टगालयूकरस्वम् ॥

**केतुमती लुसे लुसे ॥२१॥**

यदि लुसे लुसे इति लक्षणं भवति, भवति केतुमती नाम ॥

यमपाविषप्रहितरोगः केतुमतीव वर्ष्म किल इति ।

अभितो हिताहितमनुष्याः एत तपोदमप्रवरगुप्ताः ॥

**आख्यानिका शरे शरे ॥२२॥**

यदि शरे शरे इति लक्षणं भवति, भवति आख्यानिका नाम ।

यदाहमैश्वर्यसमन्वितोऽहं ज्ञानान्वितोऽहं प्रियदर्शनोऽहम् ।

इति प्रमोदी मदमेति मर्त्यः तत्र स्वपश्यन्विपरीतभावम् ।

## हरिणीप्लुता वृसा(सौ) हृसा(सौ) ॥२३॥

यदि वृसा(सौ) हृसा(सौ) इति लक्षणं भवति, भवति हरिणीप्लुता नाम ।

कृतकर्मविपाकवशाद्गुणां निपतति न्वचिदेव सुखं कियत् ।

कमलालययोषिदपि क्वचित् न च चिरं रमते हरिणीप्लुता ॥

## मालभारिणी वृते पृते ॥२४॥

यदि वृते पृते इति लक्षणं भवति, भवति मालभारिणी नाम ।

घनमासग्रहे तद्धितप्रदीपे पवनैर्गन्धवहैः कृतानुयात्रम् ।

विनिमीलितसूर्यचन्द्रनेत्रं स्वसितीवाभ्वरमम्बुभारस्त्रिभम् ॥

## अपरवक्त्रं विषौ हुषौ ॥२५॥

यदि विषौ हुषौ इति लक्षणं भवति, भवति अपरवक्त्रं नाम ।

स्वशिष्टमपरवक्त्रदर्शनं विगतदयोतिविलालराक्षसः ।

कथमिव पिशिताशिनानां नृणां भवति दया मृगमस्त्वपश्चिपु ॥

## पुष्पिताग्रं हिते हुन्ते ॥२६॥

यदि हिते हुन्ते इति लक्षणं भवति, भवति पुष्पिताग्रं नाम ।

भ्रमरपरभृतोऽगीतजुष्टं कितल्यभूषितचारुपुष्पिताग्रम् ।

उपवनमिव दृष्टपुष्टोभं कुलमुपयाति समुद्रमाद्यु नाशम् ॥

## यमवती तुत्नौ रुत्रे ॥२७॥

यदि तुत्नौ रुत्रे इति लक्षणं भवति, भवति यमवती नाम ।

मानवा अवश्यभाषिनाविमौ कथं जरायुर्मावतीव दुःखसौ समीक्ष्य ।

द्वेषमोहरागरोषपीडितास्तपो वनं प्रयातुमत्र तत् सङ्गते ॥

## शिखा वा(वो) दोप् वो दौप् ॥२८॥

यदि विव त्रयोदशकृत्वः सकृद्विवपि(पी) पुनश्चतुर्दश कृत्वो विव सकृद्विवपि(गी) लक्षणं भवति, भवति शिखा नाम ।

नरपतिविरहितनरजगदिव सुरपतिविरहितमिव च सुरजगत् ।

बलपतिविरहितबलमिव च कुलमिव च कुलधरवरपुरुषविरहितम् ।

रत्निकरविरहितगगनमिव सलिलरुहविरहितमिव न च सरः ।

भवति हि कुलबलविभवविरहितकरेण विरहितनिरवधिकमिव जननम् ॥

इति रत्नमञ्जूषिकायां छन्दोविचित्रां भाष्यतो द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

## तृतीयोऽध्यायः

पादे ॥१॥

पादे इत्यधिकारः । इत उत्तरं बलक्षणमभिधायामः तत्पादे इति वेदितव्यम् । यथा 'वैतालीयमन्ते लौ ।' पादे ह्यस्युपस्थितं भवति ॥

वैतालीयमन्ते लौ ॥२॥

यदि चतुर्गुं पादेषु अन्ते अवगाने लालि लालिताविति लक्षणं भवति, भवति वैतालीयं नाम ॥

आपातलिका ले ॥३॥

यदि ले इति लक्षणं स्यात्, भवति आपातलिका नाम ॥

सूक्ष्माङ्गुलियन्धनकेशी सारसहंसकलस्वनवाणी ।  
आपातलिका विधिरेषा नृपतिकुलेषु विशेषश्रुपैति ॥

औपच्छन्दसिकं ते ॥४॥

यदि ते इति लक्षणं स्यात्, भवति औपच्छन्दसिकं नाम ॥

पादैः श्लिष्टैर्नानाङ्गुलि(ली)कैः सुस्निग्धोपचितैः सुगूढगुल्फैः ।  
आताम्रनखैः शमुन्नताग्रैः औपच्छन्दसिकं वनं लभन्ते ॥

आह—वैतालीयापातलिकयोः पादान्तस्य अष्टमात्रस्य औपच्छन्दसिकस्य दशमात्रस्य च विन्यास-  
क्रमोऽभिहितः । शेषः कौटम्बिष इत्यत्रोच्यते—

शेषे ( ५ ) युज्योद्द्वन्द्वं दूनः ॥५॥

औपच्छन्दसिकान्तानामयुक्तादयोरभिहितलक्षणशेषे षण्मात्रा भवति मिभितामिभिताः । तत्र मिभिता  
अव(वि)शिष्टलववः द्वन्द्वं भवति मियुनीभूताः । युग्माः समा इत्यर्थः । कथं दादीदू इति न पुनर्द-  
दिवो( दु ) इति । तथा च एव उदाहृतम् ॥

युज्योद्द्वन्द्वः ( युज्योद्द्वन्द्वः+च्छि न ) ॥६॥

युक्तादशेषे तेनैव क्रमेण अष्टमात्रा भवन्ति । विहीने<sup>१</sup>( विहने )ति प्रतिषेधः । युक्तादशेषे विच  
इहहि इहहि इति न्यासो न भवति ॥

१ आवातलिका A. २-न विहीनेति B.

## दिण( णो ) म् प्राच्यवृत्तिः ॥७॥

यदि तृतीयमात्रापरौ युक्पादशेषे गुरुर्भवति परं च यदि वैतालीयरक्षणं भवति, भवति प्राच्यवृत्तिर्नाम ॥

विपुलाक्षिभुजः स्तनान्तरः सन्निकृष्टशान्तराङ्गुलिः ।

कर्णो वैकर्तनो नरः प्राच्यवृत्तिरवनीश्वरो भवति ॥

## दणोऽयुज्यो(जो)रुदीच्यवृत्तिः ॥८॥

मित्यनुवर्तते । यदि अयुक्पादशेषे प्रथममात्रापरौ गुरुर्भवति एवं च यदि भवात् वतालायरक्षणं, भवति उदीच्यवृत्तिर्नाम ॥

विद्यालज्जना महोदराः हरिणाक्षाः कलमन्दभाषिणः ।

नरा दुरितसन्निभाननाः सटशास्त्रि(शाः स्त्री) भिरुदीच्यवृत्तिभिः ॥

## उभयं प्रवृत्तकम् ॥९॥

अयुक्पादशेषे प्रथममात्रापरः युक्पादशेषे तृतीयमात्रापरश्च गुरुर्भवति परं वैतालीयरक्षणं भवति, भवति प्रवृत्तकं नाम ॥

प्रलम्बहनुशङ्खपिण्डितम् भुवनवक्त्रकपितुत्यनासिकम् ।

मुखं विपमदन्तशोचनं पापकर्मणि सदा प्रवृत्तकम् ॥

## मात्रासमकं दि(दी) गः ॥१०॥

पादे इत्यधिकारोऽनुवर्तते । यदि चत्वारो गो भवन्ति, भवति मात्रासमकं नाम । उत्तरभोदाहरिष्यामः ॥

## न दणु ॥११॥

तस्य मात्रासमकस्य प्रथमगणः विपेषु न भवति ॥

## दिणि (णी) ॥१२॥

तस्य मात्रासमकस्य तृतीयगणो विवपी एव भवति ।

मात्रा सुषुतान्विषयुतान् केचित् मात्रासमकान्विषुतान् केचित् ।

मर्त्यां घ्नन्ति हि पिशिते नीचाः नित्यं यान्ति हि नरकं पापाः ॥

## उपचित्रा यृ ॥१३॥

यदि तृतीयगणो माया इति स्रस्वष्ट इति वा भवति शेषं च मात्रासमकलक्षणं भवति, भवति उपचित्रा नाम ॥

चित्तानामुपचित्रार्थानां तेषां शास्त्रादोभ्युपजीवन् ।  
क्लेशं सततं प्राप्तस्य (पृ १) बुधो नाद्यं तान्यपि याति तथापि ॥

वानवासिका णि ॥१४॥

यदि तृतीयगणः विषेपु इति वा नदहहि वा भवति, भवति वानवासिका नाम ॥

विश्लोको दाण् णि ॥१५॥

यदि द्वितीयगणः विषेपु इति वा नदहहि इति भवति, भवति विश्लोको नाम ॥

कुशानमोहिताभिध(न्धी)भूतः क्षीणात्मदे(दी)नविश्लोकानाम् ।  
सक्तस्तु ना यदैषां चाते लोके मतिं न धत्ते धर्मे ॥

चित्रा पुनि च दिण् ॥१६॥

यदि द्वितीयगणः विषेपु इति वा नदहहि इति वा तृतीयगणश्च विषपी इति ( +त्रा ) विषेपु इति वा नदहहि इति वा भवति, भवति चित्रा नाम ॥

कुशानदृष्टितमोनिहन्त्री नानाप्रामाणनयवरचित्रा ।  
वाणी जिनवरकथिता शुद्धामा(भा)त्यम्बरेऽर्कचिर(रि)व चित्रा ॥

पादकुलकं मिश्रम् ॥१७॥

यानि मात्रासमकादीनां निर्दिष्टानि लक्षणानि तेषु द्वे वा त्रीणि वा चत्वारि वा यदि एकस्मिन् श्लोके दृश्यन्ते स पादकुलकसंज्ञो भवति ॥

पल्लवकुसुमपलाशविचित्रं वृक्षं बहुपुष्पफलाकुलकम् ।  
दृष्ट्वा पुनरपि विरहितशोभं नैश्वर्यमदमिह च कुरुतार्याः ॥

गोत्यार्या नां नामिति ॥१८॥

मात्राणामित्यर्थः । चतुर्गणपादा विरहितगुर्वक्षरा गोत्यार्या नाम ।

दिविजयतिरिति च मनुजयतिरिति च । सुरमुकुटमहितदिविजयतिरिति च ।  
कुरुवलधृतिमतिधनरहित इति च । यम इति न च परिहरति च हरति च ॥

विशिखार्धे मः ॥१९॥

यस्य श्लोकरय चतुर्गोणाः पादस्या ( दाः अ ) र्धं गुरुणि अर्धं लघूनि भवन्ति, भवति विशिखा नाम ॥

सिंहरकन्धः पीनो बाहू वंशध्यामः कम्बुमीवः ।  
परवृषभगजसदृशागतिरमित-नपुरमरणसदृशानर इह जयति ॥

## चूलिका शिखार्धम् ॥२०॥

शिखा वा ( वो ) दोष् वो दौषियुक्तम् । एतच्छिखाया अर्धस्य लक्षणं यदि तेनैव एकः श्लोकं भवति, भवति चूलिका नाम ॥

वरहयगजरथनररतिजनगृह-मुत्तमणिकनकरजतमुल्लरम् ।

न च समनुभवति यमपुरुषसमनु-चरधिरहितमनु चरति द्युचरितम् ॥

## नृत्यगतिर्दु ॥२१॥

ग इत्यनुवर्तते । यस्या जाते ( ते ) पादशः पञ्च गणा भवन्ति, भवति सा नृत्यगतिर्नाम ॥

मस्येषु कदाचित्तिर्यक्षु कदाचित् इवर्गेषु कदाविच्छ्रेषु कदाचित् ।

कृत्वा किल जननं भ्रुत्वा बहुरूपं नृत्यगतिं जीवो वर्तयति च नित्यम् ॥

## मेवान्त्यः तस्यापि ॥२२॥

नृत्यगतिजातेरन्त्यो गणो मेव गुरुरेव भवति । तथा चैवोदाहृतम् ॥

## दिणच ॥२३॥

तृतीयगणोपि मेव भवति ॥

## छेदः ॥२४॥

तस्मिन् तृतीयगणे छेदो भवति ॥

## नटचरणं दि ॥२५॥

अत्रापि ग इत्येव । यस्या जातेः पादशः त्रयो गणा भवन्ति, भवति नटचरणं नाम । उत्तरत्रयवक्ष्यमाणेनापि लक्षणेन युक्तम् ॥

नटचरणादपि चरला चलतीयं युवतेति ।

युवतायां मदमार्याः कुरुत न मो(भोः) कुरुत तपः ॥

## मेवान्त्यः ॥२६॥

तस्या नटचरणजातेः अन्त्यो गणो मेव भवति ॥

## दाणच ॥२७॥

द्वितीयगणोपि मेव भवति ॥

## छेदः ॥२८॥

तस्या नटचरणजातेः पादशः द्वितीयगणे छेदो भवति ॥

इति रत्नमञ्जूषायां छन्दोविचित्यां भाष्यतः तृतीयोऽध्यायः ॥

## चतुर्थोऽध्यायः

उद्गतं पुनु, निषौ सिरि ( री ) पुपुम् ॥१॥

यदि प्रथमे पादे पुनु; द्वितीये निषौ; तृतीये सिरि (री) चतुर्थे पुपुम् इति न्यासो भवति; भवति उद्गतं नाम ॥

नर उद्गतं कुलमुपेत्य विपुलमतिवत्यसंयुतः ।

कश्चिदसुखमनुलं लभते कृतकर्मपाकविकृतेः ततो हितः ॥

आह—इह पाद इत्यनुवर्तते वा न वा । किं जातः (तम्) । यदि वर्तते पुनुनिषौ सिरि (री) पुपुम् इति एतस्यादस्य एव लक्षणम् । चतुर्गुणः श्लोकः स्यात् । अप्वनिवृत्तकं दिण् तिमि इति अनिर्देशः स्यात् । भवति, अनुवर्तते इति । ननु च उक्तं पादस्यैव लक्षणं भवति चतुर्गुणः चतुर्गुणः श्लोकः स्यात् इति । दिण् तिमिति तृतीयपादस्य विन्यासकामाभिधानात्सर्वस्य, इति विज्ञायते । पादग्रहणं प्रत्येकं परिसमाप्यते पादे पुनु, पादे निषौ, पादेसिरि (री) पादे पुपुमिति । अथवा यस्य आचार्यस्य शीलं लक्ष्येत नियतेषु द्वाभ्यामक्षराभ्याम् एकस्य पादस्य विन्यासलक्षणं ब्रवीति इति 'उपचित्रकं विषौ छुपे इति' ( २-२७ ) तत्रापि द्वे द्वे अक्षरे एकैकस्य पादस्य विन्यासलक्षणमिति ग्राह्यम् ॥

दिण् तिमि(मी) सौरभकम् ॥२॥

यदि तृतीयपादे तिमि(मी) इति न्यासो भवति शोपेपु पादेषु उद्गतवद्भवति, भवति सौरभकं नाम ॥

परिमण्डलाक्षिवदनश्च कुटिलतनुदीर्घनासिकः ।

प्रस्थितं च यदि सौरभकं गणमृत्सुरेष हि भवेत् चमुरतिः ॥

हिपि ( पी ) ललिता ॥३॥

यदि तृतीयपादे हिपी इति न्यासो भवति शोपेपु पादेषु उद्गतवद्भवति भवति ललिता नाम ॥

ललितानि सुस्मितपट्टनि मधुरवचनानि योषिताम् ।

जननमरणजलधौ धारणं नहि तैः सु ( तेषु ) रज्यत हि भो हितार्थिनः ॥

उपस्थितप्रचुपितं क्वौपे, वृप्रे, विनि (नी) हिहि (ही) म् ॥४॥

यदि प्रथमे पादे क्वौपे, द्वितीये वृप्रे, तृतीये विनि (नी), तृतीये हि(ही) म् इति विन्यासो भवति, भवति उपस्थितप्रचुपितं नाम ॥

जात्यक्षा न जयज्वेन ( XXXXX ) समुपस्थितजरकस्तु दण्डहस्तः ।

सकिल चकितचकितं व्रजति च पतति च चलनस्वलनाग्रम् ॥

वर्धमानं द्विदिण् ॥५॥

यदि तृतीयपादो द्विगुणितो भवति अन्ये उपस्थितप्रचुपितवद् भवति, ( भवति ) वर्धमानं नाम ॥

दृष्टेन्दुं प्रथमप्रवर्धमानमुदितम् । पुनरेनमहरहः क्षयं ब्रजन्तम् ।  
कुलबलघनकनकैः न च किञ्च वरमतयः । कुक्षत मदभिह कुक्षत चात्महितानि ॥

### शुद्धविराडार्धभं यीनी ॥६॥

यदि तृतीयपादो(दे)यीनाविति न्यासो भवति अन्यत्रोपस्थितप्रचुपितवद्भवति शुद्धविराडार्धभं नाम ॥  
रोगश्लेष्मस्युसन्ततसेष्यां प्रविगाह्य किल भवाटवीं भ्रमन्ति ।  
ये शुद्धविराजमार्धभं प्रवचनमुपनयन्त्विं न विदन्ति ॥

### दामावारा ददादिदि(दी)नि ॥७॥

आद्ये पादे सकृन् नि, द्वितीये द्विनि, तृतीये त्रिनि, चतुर्थे चतुर्नि कृत्वा । नि इति नहृहृदि इत्यर्थः,  
एवं भवति, भवति दामावारा नाम ॥

### नि च्छेदः ॥८॥

तस्या दामावारायाः उक्तासु माषासु पादशश्वदुर्मात्रावसाने छेदो भवति ॥

### नेन्ते ॥९॥

तस्या एव दामावारायाः चतुर्षु पादान्तेषु नेन नरोचे इति न्यासो भवति । कश्चम्—  
बहुविधनयवादा मुनिपतिवदनजठररामा ।  
प्रणयति शिवपदमभिनुतनरदेवा सलिलसुखिलसदचलजलनिधिसमधीरा ॥

### पादपरिवृत्तेर्नामाक्षरपरिवृत्तिः ॥१०॥

येन प्रकारेण चत्वारोऽपिधादाः परिवृत्ता भवन्ति तेनैव प्रकारेण तान्यपि चत्वारि नामाक्षराणि परि-  
वृत्तानि संज्ञा भवन्ति । यथा—दामावारा । दामारावा । दावामारा । दावारावा । दारामावा । दारावामा ।  
मादावारा । मादारावा । मावादावा । मावारादा । मारादावा । वामादावा । वामारादा । वादावामा ।  
वादावामा । वारादामा । वारामादा । रामादावा । रादावामा । रामावादा । रादावामा । रावावामा ।  
रावावामा । एवं चतुर्विंशति वृत्तानि भवन्ति । स परिवृत्तपादः उदाहरणश्लोको भवति । तन्श्लोकपादान्तैरक्षरैरपि  
वृत्तनामानि लक्ष्याणि ॥

### अनुष्टुप् ॥११॥

अनुष्टुप् इत्यधिकारः आ अध्यायपरिसमाप्तेः ॥

### वक्त्रम् ॥१२॥

अनुष्टुभि छन्दसि वक्त्रसंज्ञा भवति । तस्य लक्षणमुत्तरत्रैव वक्ष्यते ॥

नादौ सि ॥१३॥

तस्य वक्त्रस्य आदौ पादशः स्रस्वत् इहहि इति द्वौ त्रिकौ न भवतः ॥

दि(दी)ण् ष ॥१४॥

तस्यैव वक्त्रस्य पादशः चतुर्धाक्षरात्परतः नरीचे इत्येवार्यं त्रिको भवति ।

सिंहमस्यघशाङ्गारं कौञ्चवर्हिणहंसाक्षम् ।

मेघदुन्दुभिनिर्घोषं मही कामयते वक्त्रम् ॥

पथ्या युजोः ष(ष्) ॥१५॥

यदि चतुर्धाक्षरात्परतः युक्पादयोः विपेषु भवति, भवति पथ्या नाम ॥

अनुबद्धकटी कन्या चक्रवाकनिकृजिता ।

अपि क्रीडा नृणां पथ्या प्रजागलमुखावहा ॥

विपरीताऽयुजोः ॥१६॥

यदि तथैव अयुजोः विपेषु भवति, भवति विपरीतपथ्या नाम ।

ऊर्मिलोलशिरोरहा कन्यका मदिराक्षी या ।

बाहुस्यधितपयोधरा पथ्या हि विपरीता सा ॥

चपला इ ॥१७॥

यदि अयुजोः इहहि भवति, भवति चपला नाम ॥

रुक्षपिण्डाप्रदशना वक्त्रनिर्मावनासाम्रा ।

कन्यका वातचपला काङ्क्षते व्यस्तलौभाग्यम् ॥

विपुला युजोर्द(दृ) न् ॥१८॥

यदि युजोः सप्तमो लघुर्भवति, स्याद्विपुला नाम ॥

पृथुपीनमृदुभोणी विपुलाक्षी हंसवना ।

असितायतकेशान्ता वृत्ता कन्या पुत्रार्थिना ॥

सर्वत्र सैतवस्य ॥१९॥

यदि सर्वपादेषु सप्तमस्याक्षरस्य लघुत्वं भवति सैतवस्याचार्यस्य विपुला नाम ॥

मण्डलं शिवमाननं धर्मशीलमनाविलम् ।

स्त्रि ( स्त्री ) मुखेऽनपत्यता दुर्भगं तु महामुखम् ॥

## सति मकरशा मध्ये ॥२०॥

विशेषविशिष्टत्वात् दृशितं निवृत्तम् । दिण् ( ण ) इति प्रकृतमेवानुवर्तते । यदि चतुर्थाक्षरात्परतः सस्वत्, शाशाश, लालितौ, ह्रह्रि इति एते त्रिका भवन्ति विपुलाशब्दात् पुकारं ऋदस्य मकरशामध्ये भूत्वा यथाक्रमं संज्ञा भवन्ति । यदि सस्वत् भवति, विपु ( म ) ला नाम स्यात् ॥

बहुसर्वं चादमुखं चतुरस्रं घातमुखम् ।

विषमो दुःकालहितं कृपणात्म्यं ह्रस्वमुखम् ॥

यदि शाशाश भवति, स्यात् विकला नाम ।

स्निग्धच्छविं पद्मप्रभां हान्विच्छदा दैत्यारिणा ।

किं चाय मे देवैः सह सेधैवृत्तः सेनापतिः ॥

यदि लालितौ भवति, स्यात् विरला नाम ।

भग्नतुण्डं केकराक्षं नासावर्त्रं यत्करालम् ।

प्रस्लि( श्लि )ष्टोष्टं( ष्टं ) पीनगण्डं क्रूरं नार्यस ( स्त ) ग्मुखं स्यात् ॥

यदि ह्रह्रि भवति, भवति विशाला नाम ॥

स्फारितास्यं यदि मुखं शूकतीक्ष्णाम्रदशनम् ।

श्येनतुल्ये च नयने वाहिनी वारिचपला ॥

इति रत्नमञ्जूषायां छन्दोविहित्यां भाष्यतः चतुर्थाऽध्यायः ॥

## पञ्चमोऽध्यायः

समानं लः ॥१॥

पाद इति अनुवर्तते । गायत्र्यादिषु उत्कृतिपर्यवसानेषु छन्दःसु . पादशः आपादपरिसमाप्तेः यदि  
लालि इति न्यासो भवति, भवति समानं नाम ॥

पाणिपादमस्तकाननाक्षिकुक्षिपृष्ठपाद्वदन्तकर्णनासिकादि ।

तन्तृणां समानमेव येषु यस्तु शास्ति तत् स्वपूर्वपुण्यगक एष ॥

एतत् जगत्यां छन्दसि । तथा अन्येष्वपि छन्दःसु ।

प्रमाणं रः ॥२॥

यदि नरो इति न्यासो भवति, प्रमाणं नाम स्यात् ॥

मतिद्युतिप्रभावसत्त्ववाग्बुः बलाढ्यताकुलोद्भवस्वकान्तयः ।

तप(पः)प्रमाणलक्षिता क्षितौ तृणां ततः तपः कुरुध्वमुत्तमा नराः ॥

वितानमन्यत् ॥३॥

एताभ्यां समानप्रमाणाभ्यामुत्तरत्र वक्ष्यमाणेष्वयः तनुमध्यादिभुजङ्गविजृम्भितपर्यवसानेष्वथ यदन्यत्समहृत्  
यस्मिन् छन्दसि भवति तत् वितानं नाम । एतच्च मात्रासमकं (क) नृत्यगतिनटचरणानि ( ० शरणादीनि  
नामानि ) भजते ॥

अभ्रसंकटविनिःसृततपनः तत्क्षणं भवति निष्कृतजलदः ।

नादयन्निव महीं दृष्ट्वा च दिशा (शः) दुर्दिनं महदुपोहति मघवा ॥

गायत्री ॥४॥

इतःप्रभृति गायत्र्यादिछन्दःसु कतिपयानि वृत्तानि संज्ञालक्षणाभ्यां निर्दिश्यन्ते ॥

तनुमध्या शे ॥५॥

यदि पादशः शे इति न्यासो भवति, भवति तन्मध्या नाम ॥

सेनापतिपुत्री शोकात्पतिता सा ।

आशीत्तनुमध्या भूयस्तनुमध्या ॥

मुकुलिता हे ॥६॥

दि हे इति न्यासो भवति, स्यात् मुकुलिता नाम ॥

विमुक्कलितायाः कुसुमलयायाः ।  
छगगतघोभा भवति वरभीः ॥

सूचिमुखी पाः ( पा ) ॥७॥

यदि पा इति न्यासो भवति, सूचिमुखी नाम स्यात् ॥  
जमति प्राधान्यं भवति प्रागेव ।  
किमुत श्रेयोऽन्यत् तपसा (सो) हे मर्त्याः ॥

शिखण्डिनी चा ॥८॥

यदि चा इति न्यासो भवति, भवति शिखण्डिनी नाम ॥  
सुरेन्द्रेः पूष्येभ्यः नरेन्द्रैरर्च्येभ्यः ।  
सुनीन्द्रैरीड्येभ्यः नमः सर्वशेभ्यः ॥

उष्णिक् ॥९॥ कुमारललिता षि(षी)म् ॥१०॥

यदि षि(षी)म् इति न्यासो भवति, भवति कुमारललिता नाम ॥  
अलं खलु स राभः कुमारललितेन ।  
इतीव पलिताङ्गुन जरा प्रतियुनक्ति ॥

वज्रकं शि(शी)म् ॥११॥

यदि शि( शी )मिति न्यासो भवति, भवति वज्रकं नाम ॥  
वज्रं तृणमपि स्यात् काले समुपयाते ।  
वज्रं तृणमपि स्यात् काले समुपयाते ॥

अनुष्टुम् ॥१२॥ माणवकक्रीडितकं मिमि(मीमी) ॥१३॥

यदि मिमि(मीमी)ति न्यासो भवति, स्यान्माणवकक्रीडितकं नाम ॥  
सर्वजगत्ख्यातयद्याः स्यान्मनुजो ज्ञानयुतः ।  
तत्परतो नैव हितं माणवकक्रीडितकम् ॥

चित्रपदं मि(मी)ने ॥१४॥

यदि मि(मी)ने इति न्यासो भवति, भवति चित्रपदं नाम ॥  
अप्रियमप्यवनीन्द्राः सुप्रियवत्प्रवदन्ति ।  
को हि नरो भुवि विन्धात् चित्रपदं नृपवृत्तम् ॥

बृहती ॥१५॥ भुजगशिशुस्तृता विना ॥१६॥

यदि विना इति न्यासो भवति, भवति भुजगशिशुस्तृता नाम ॥

जगति सह जरारोगैः वि(चि ?)रमतिरमते यो ना ।  
स्वपिति किल स निर्मातिः भुजगशिशुस्तृतागारे ॥

तरङ्गवती ता(लौ)नी ॥१७॥

यदि ता(लौ)नाविति न्यासो भवति, भवति तरङ्गवती नाम ॥

या तरङ्गबुद्बुदोपमा तां मनुष्यतां सुदुर्लभाम् ।  
प्राप्य मोदते नराधमो नोत्तमो जिनेन्द्रशास्त्रवित् ॥

पङ्क्तिः ॥१८॥ शुद्धविराट् मघी ॥१९॥

यदि मघाविति लक्षणं भवति, भवति शुद्धविराट् नाम ॥

भूत्वा शुद्धविराट् नरेडतः वर्चस्कक्रिमितामुपैति यत् ।  
एतेनैव नते(ये)न दर्शिता संसाररमणीयता बुध ॥

पणवो महा ॥२०॥

यदि महा इति न्यासो भवति, भवति पणवो नाम ॥

मृद्वङ्गी मृदुल्लितालापा संयुक्ता वरयुवतिः पत्या ।  
बभ्राजे निजशिशुना यान्ति(न्ती) खे तारेव पणवमभ्या सा ॥

उपस्थिता शुनौ ॥२१॥

यदि शुनाविति न्यासो भवति, भवति उपस्थिता नाम ॥

भ्याम्नीव जरा समुपस्थिता रोगैश्च वृकैरे(रि)व भक्ष(क्ष्य)से ।  
मृस्युश्च मृगेन्द्र इवेक्षते भद्यापि हितं न करिष्यसे ॥

रुक्मवती लेले ॥२२॥

यदि लेले इति न्यासो भवति, भवति रुक्मवती नाम ॥

पुष्पितनानानोकहवन्तं प्राप्य वनान्तं प्रावृषि कश्चित् ।  
उन्नतपीनभोगिणपयोदां योषितस्मिष्टां नाथ उवाच ॥

## मत्ता माहे दिच्छेदः ॥२३॥

यदि माहे इति न्यायो भवति भवति चतुर्थाक्षरैच्छेदः च, मत्ता नाम ॥

नारीणां ना नल्लिनपुत्रीनां मत्ताक्षीणां मधुरवचोभिः ।  
बद्धो बद्धो भ्रमवद्यगो यः बद्धो बद्धः स च यमपाशैः ॥

## त्रिष्टुम् ॥२४॥ इन्द्रवज्रा शरे ॥२५॥

यदि शरे इति न्यायो भवति, भवति इन्द्रवज्रा नाम ॥

प्रक्षीणपूर्वाङ्गितपुण्यराशि न प्रायते वज्रचरोऽपि मर्त्यम् ।  
अक्षीणपूर्वाङ्गितपुण्यराशिः नैवेन्द्रवज्राभिस्तोऽपि नश्येत् ॥

## उपेन्द्रवज्रा शरे ॥२६॥

यदि शरे इति न्यायो भवति, भवति उपेन्द्रवज्रा नाम ॥

उपेन्द्रवज्रायुधपाण्डवेषु स्थितेष्वपि ख्यातपराक्रमेषु ।  
पुराभिमन्युं युधि चेज्जयेनां जयद्रथो रक्षति कं कमन्यः ॥

## इन्द्रमाला द्वयम् ॥२७॥

बदीन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्रे सहैकस्मिन् श्लोके भवतः, भवति इन्द्रमाला नाम ॥

अम्बानमाला (स्या ?) सुरसुन्दरीभिः घृत्तेन्द्रमाला न्यवते दिवश्चेत् ।  
कालेन नार्था इव युक्तमाला मर्त्या वर्य किं जलबुद्बुदामः ॥

## दोधकं लुपे ॥२८॥

यदि लुपे इति न्यायो भवति, भवति दोधकं नाम ॥

कालविषादिव नाटकवृत्तं दर्शयितुं भुवि सर्वजनेभ्यः ।  
अम्बररङ्गमसौ गिरिकूटात् सूर्यनटः प्रविशन्निव भाति ॥

## रथोद्धता तिलौ ॥२९॥

यदि तिळाविति न्यायो भवति, भवति रथोद्धता नाम ॥

सर्वभावविधितस्त्वदर्शिनः सर्वस्वहिततत्त्वदेशिनः ।  
अर्हेतोऽहमवराधिनाशिनः संस्तुवे त्रिभुवनप्रकाशिनः ॥

स्वागता तिले ॥३०॥

यदि तिले इति न्यासो भवति, भवति स्वागता नाम ।

धर्मतीर्थकरमुख्य नमस्ते नाथ नष्टभवधीज नमस्ते ।  
बुद्ध सर्वजनवृत्त नमस्ते हेमनामजिनमान नमस्ते ॥

श्येनी तुलौ ॥३१॥

यदि तुलौ इति न्यासो भवति, भवति श्येनी नाम ॥

इयेनग्रप्रवायसादिभोजनं मूत्रपित्तशोणितादिभाजनम् ।  
सन्ततं शरीरमप्रनाशानं भूषणेन मोहयत्यबीर्जनः ॥

सुभद्रिका विषौ ॥३२॥

यदि विषाविति न्यासो भवति, भवति सुभद्रिका नाम ।

इह भवति हि धार्मिकस्य तुः सुरवरनरपूजनीयता ।  
पुनरपि च सुभद्रिका गति(तिः) परममपि पदं तथा गतः ॥

सारिणी रिताँ ॥३३॥

यदि रिताविति न्यासो भवति, भवति सारिणी नाम ॥

तथा मकरकेतुमान् केतुमान् रथैश्च शतशोऽभितः शोभितः ।  
रणे च रथसङ्कुलः सङ्कुलः युगान्तजलदाहणो दाहणः ॥

वृन्ता विहा ॥३४॥

यदि विहा इति न्यासो भवति, भवति वृन्ता नाम ।

यमपुरुषकरहतं यावत् पवनहत इव फली वृक्षः ।  
न निपतति तव शरीरं त्वं कुरु कुरु हितमहितं त्यक्त्वा ॥

शालिनी माल्ये दि(दी) ॥३५॥

यदि माल्ये इति न्यासो भवति, भवति शालिनी नाम । चतुर्धाधरैः छेदत्र भवति ॥

एतद्रूपं कामुक त्वं ब्रवीषे । एषा नारी शालिनी मतिप्रयेति ॥  
भक्ष्या या ते कारमेयैः सद्यत्रैः । विद्वद्भिर्विष्णुर्णकुम्भायमानम् ॥

## वातोर्मिमाला ऋष्ये ॥३६॥

यदि माष्ये इति न्यासो भवति, भवति वातोर्मिमाला नाम । दि अनुवर्षनात् चतुर्थाक्षरेच्छेदश्च भवति ।

वा ह्रस्वा वै विकटा काकजङ्घी संक्षितभ्रूः पदवस्थूलकेशी ।  
नासोपेता व्यपदेशभिता वा सा वै कन्या धृतवातोर्मिमाला ॥

## अमरविलसिता यहि(ही) ॥३७॥

यदि यहि(ही) इति न्यासो भवति, भवति अमरविलसिता नाम । चतुर्थेऽक्षरे छेदः ॥

कन्यावन्यां समक्षितदद्याना पीनश्रोणी मृदुकरधरणा ।  
कुर्यात् प्रीतिं पतिमवनरत्ना त्रिभेव खग् अमरविलसिता ॥

इति रत्नमञ्जूषायां छन्दोविधित्वां भाष्यतः पञ्चमोऽध्यायः ॥



## षष्ठोऽध्यायः

जगती ॥१॥

जगत्पथिकारः । किमर्थोऽयमधिकारः ? 'भुजङ्गप्रयातं चः' (+इति) वक्ष्यते । तत्र न शायते कियन्तश्च इति । जगत्पथिकारात् चत्वार इति गम्यते, तदर्थोऽयमधिकारः ।

भुजङ्गप्रयातं चः ॥२॥

यदि जगत्यां छन्दस्यापादपरिसमाप्तेः नरोचे इति न्यासो भवति, भवति भुजङ्गप्रयातं नाम ॥

न पात्रे प्रदिस्त्रजपात्रे प्रदिस्त्रत्(न्) न देयं प्रदिस्त्रजदेयं प्रदिस्त्रन् ।  
न काले प्रदिस्त्रजकाले प्रदिस्त्रन्(न्) न दाता नरः स्यान्नदाता नरः स्यात् ॥

तोटकं पः ॥३॥

यदि विवपी इति न्यासो भवति, भवति तोटकं नाम ॥

स्वदतो(वचो ?)भिरुदारगुणैर्विपुषः मतिमप्यमलां युयुषो जगति ।  
सततं वरधर्मकथां जुगुषः प्रणुन्पुसहं वरतीर्यकृतः ॥

वंशस्था षष्ठी ॥४॥

यदि षष्ठाविति न्यासो भवति, भवति वंशस्था नाम ॥

द्वयानि भद्रे कुमुदानि मारुतः मितान्तताम्राणि च पाण्डुराणि ।  
उपोप वावाति यथायथावृत्तं<sup>१</sup> तथैत्र बिम्बोष्ठमिदं तवाननम् ॥

इन्द्रवंशा शष्ठी ॥५॥

यदि षष्ठाविति न्यासो भवति, भवति इन्द्रवंशा नाम ॥

मध्वन्दिनोत्क्रापतनं च दृश्यते महाण्डजानां पतनं च दृश्यते ।  
चन्द्रार्कतारापतनं च दृश्यते नैवान्तकस्यागतिरेव दृश्यते ।

वंशमाला द्वयम् ॥६॥

यदि द्वे अपि लक्षणे सदैव भवतः, भवति वंशमाला नाम ॥

लोकात्प(म्)रत्रोत्तमभोगसंयुतात्(न्) वो हिंसयात्मानमवापयेत् ॥  
 स पाययित्वातिमुदुःसहं विषं स्ववंशमालापगतिं समापयेत् ॥

समवृत्तेषु विषमार्धसमवृत्तभूताया वंशमालाया वचनं लघुसंप्रतिपत्त्यर्थम् । अयुक्तादप्रथमपादद्वितीय-  
 पादतुलीयपादपूर्वार्धत्रिपदीमध्यमद्विपदीम्बो वंशस्य-इन्द्रवंशाभ्यां चतुर्दशविधा वंशमाला तथा इन्द्रमाला च  
 अचसमर्द्धं वर्तते । हि-आख्यायिके इति शब्दसंज्ञे (१) ॥

### प्रमिताक्षरा पुषि(पी) ॥७॥

यदि पुषि(पी) इति न्यासो भवति, भवति प्रमिताक्षरा नाम ॥

अलकावकीर्णहरिचित्रसं जनिताक्षिरागमघरामरसम् ।

सखि भाति किञ्चिदुपयुक्तसं तव वीक्षणो न मुलमभ्यधिकम् ॥

### वनमालिनी हुसे ॥८॥

यदि हुसे इति न्यासो भवति, भवति वनमालिनी नाम ॥

अधितपनं च चाङ्गनैसुवर्णं जलरुहगर्भकेसरनिभं वा ।

मलयजवालसस्यसदृशं वा वरवनमालिनीव<sup>१</sup> हरति श्रीः ॥

### द्रुतविलम्बिता हसौ ॥९॥

यदि हसाविति न्यासो भवति, भवति द्रुतविलम्बिता नाम ॥

कनकभूषणसंग्रहणोचितः ( तो ) यदि मणिस्रपुणि प्रतिबभ्यते ।

न च विरौति न चापि विराजते भवति योजयितुर्वचनीयता ॥

### वैश्वदेवी काचे दु ॥१०॥

यदि काचे इति न्यासो भवति दु इति पञ्चमे अक्षरे छेदश्च भवति, वैश्वदेवी नाम भवति ॥

ज्ञानं जगूनां नोपरोधप्रवृत्तं क्षय्यं पापानां यन्नवानां च रोधम् ।

बन्धो मोक्षश्चेत् शायते येन चात्मा सर्वहत्वं च प्राप्यते तत् प्रधानम् ॥

### जलोद्धतगतिः पिषि(पीषी) दू ॥११॥

यदि पिषि(पीषी) इति न्यासो भवति षष्ठे अक्षरे<sup>१</sup> छेदश्च भवति, भवति जलोद्धतगतिर्नाम ॥

अपावनकटीनलः कृष्णपदः बृहस्पतनुको गभीरविनयः ।

निपीडितहनुक्षुद्रुणनयनो न नन्दति नरो जलोद्धतगतिः ॥

१ चाङ्गनवर्णं B. । १ Both mss read मालिनि इव ।

१ अक्षरे A. Dropped by B. ।

घ(पु)टा हिके दृ(दृ)ण् ॥१२॥

यदि हिके इति न्यासो भवति अष्टमे अक्षरे छेदश्च भवति, भवति घ(पु)टा नाम ॥

उपगतसलिलानां नीलपद्मैः अमरपरभृत्तानां कण्ठशयैः ।  
मदनमदविलासैश्चाङ्गनानां जनयति चतुरस्वं पुण्यमासः ॥

अतिजगती ॥१३॥ प्रहर्षिणी किंतेदी ( किन्ते दि ) ॥१४॥

यदि किन्ते इति न्यासो भवति तृतीये अक्षरे छेदश्च भवति, भवति प्रहर्षिणी नाम ॥

मानुष्यं च ऋजलबुद्बुदप्रकाशं मस्वेदं बहुविधवेदनापरीतम् ।  
तस्वारं वरमुपलभ्य जैनधर्मं तं प्राप्तुं भव सततं कृतप्रयत्नः ॥

रुचिरा नौवि(वी)नौ दि(दी) ॥१५॥

यदि नौ वि(वी)नाविति न्यासो भवति चतुर्थेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति रुचिरा नाम ॥

यतिस्तुतस्त्रिदशगणेशद्रूपजितः सदीश्वरो भरतनरेश्वरसंस्तुतः ।  
अवातवान् सुखमगुलं जिनोत्तमो ददातु नो भयरहितोऽक्षयं परम् ॥

मत्तमयूरं माले ने ॥१६॥

यदि माले ने इति न्यासो भवति दि(दी) इत्यनुवर्तनात् चतुर्थाक्षरे छेदश्च भवति, भवति मत्त-  
मयूर नाम ॥

कृत्वा धर्मं शर्मतमं नृसुरेषु प्राप्त्वाप्राप्यं कापुरुषाणां मनसापि ।  
अन्ते मोक्षं नित्यसुमौख्यं समुपैति तस्माद्भवे त्वं भवसक्तो भव सक्तः ॥

शक्यरी ॥१७॥ वसन्ततिलकं मौनि(नी)ये ॥१८॥

यदि मौनि(नी)ये इति न्यासो भवति, भवति वसन्ततिलकं नाम ॥

श्रीमण्डपेषु मणिरत्नविभूषितेषु सिंहासनेषु वरचामरहृन्दमध्ये ।  
सामन्तदूषनवनानि भृशं दधाना भान्तीन्द्रभानुशशिवन्नरपाः स्वपुण्यैः ॥

असम्बाधा कङ्गा दु ॥१९॥

यदि कङ्गा इति न्यासो भवति पञ्चमे अक्षरे छेदश्च भवति, भवति असंबाधा नाम ॥

गूढस्नानयुग्मं (?) क्षितितलचरणाश्रिता कम्बुग्रीवा या सजलजलधरमिन्धा ।  
ऊर्ध्वभ्रूलेखा समुचितभुजा नृणां पात्रं लोख्यानं रुचिरतनुरसम्बाधा ॥

## अपराजिता हिम्नौ ह ॥२०॥

यदि हिम्नोविति न्यासो भवति, सप्तमे अक्षरे छेदश्च भवति, ( + भवति ) अपराजिता नाम ॥

कमलदलनखा महानयनान्तरा स्वगपतिनयना गजाङ्गुथनासिका ।  
उरवि पृथुवना महोरुकटीकृता भवति तनुरियं रणेष्वपराजिता ॥

## राजरमणीयं वि (षी)त्वे ॥२१॥

यदि वि ( षी ) त्वे इति न्यासो भवति सप्तमे अक्षरे छेदश्च ह इति अनुवर्तनात्, भवति राज-  
रमणीयं नाम ॥

सुरक्षणविशिष्टः समातबहुविद्यः सदा गुरुषु भीरुः सदा रिपुषु शूरः ।  
अनङ्ग इव नित्यं जिनोत्सवकराङ्गः रराज रमणीयः परैरहरजय्यः ॥

## प्रहरणकलिका विरिनि(नी) ॥२२॥

यदि विरिनि(नी) इति न्यासो भवति ह इत्यनुवर्तनात् सप्तमे अक्षरे छेदश्च भवति, भवति प्रहरण-  
कलिका नाम ॥

अहिनकुलमुखं पृथुसमशिरसं जलदसरसिजं सितपुरुदशनम् ।  
वरवृषभगतिं त्वरितमनुवशात् अनुसगति चमूः प्रहरणकलिका ॥

## अतिशक्वरी ॥२३॥ चन्द्रवर्मा विवि(वी) ॥२४॥

यदि विवि(वी) इति न्यासो भवति, भवति चन्द्रवर्मा नाम ॥

वरवृषभगतिव(र)रुणसममुनलः यदि च भवति मृगपतिसदृशमुखः ।  
स किल भवति समुचितबहुयशाः दिवि भुवि च नरपतिरमरसमः ॥

## माला दू ॥२५॥

सैव चन्द्रवर्मा यदि षष्ठे अक्षरे छेदो भवति, भवति माला नाम ॥

कमलशिरसमनिमिषसदृशमुखं निशितदशनमकुटिलचरणतलम् ।  
अकुलजमपि पतिमिह यदि लभते सुसुलभमयमनुभवति वसुमती ॥

## मणिगणनिकरा द ( हृ ) ॥२६॥

पुनरपि सैव चन्द्रवर्मा अष्टमेऽक्षरे छेदो भवति ( +चेत् ) भवति मणिगणनिकरा नाम ॥

गुरुतरमविषममुपचितकटिनं सुप्रटितभुजतनुपुरुषगजवरम् ।

यदि भवति जगति पुङ्गिनसममुरः भवति किमु तमिह मणिगणनिकरः ॥

मालिनो विरये ॥२७॥

यदि विरये इति न्यासो भवति दृ इत्यनुवर्तनात् अष्टमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति मालिनो नाम ॥

मम हयसुरभिन्नं मार्गरेणुं नरेन्द्राः  
 मुकुटपटविक्रमं भृत्यभूता वह्मि ।  
 न च मम परितोषः येन(यन्न)मां षत्सराजः  
 प्रणमति गुणशास्त्री कुञ्जरज्ञानदत्तः ॥

अष्टिः ॥२८॥ ललना तिहिनि(नी) ॥२९॥

यदि तिहिनी इति न्यासो भवति, भवति ललना नाम ॥

अप्रभृथ्यमभिरतिबलकुलधनकरं  
 नन्दमिन्दुवदनममलकमलबदने ।  
 ज्ञापयोपयज्ञसमिभवरसदृशगतिं  
 द्वारि तिष्ठति तव वरचचिरिति ललने ॥

वेच्छिता पि (पी) हिम (मा) दू ॥३०॥

यदि पि (पी) हिमेति न्यासो भवति दू इति षष्ठे अक्षरे छेदश्च भवति, भवति वेच्छिता नाम ॥

बलबालयवान् सततकुमतिकालपेक्षी  
 नृपतिर्विहितो गुणगणयुतवृत्तो वीरः ।  
 लभते पृथिवीं धनपशुवरपूर्णांमद्रा  
 बुजितैस्त्वहितैः शठकुह(=कण)तैर्धो युक्तः ॥

वृषभगजविलसिता सौविनि (वी) दृ ॥३१॥

यदि सौविनि(वी) इति न्यासो भवति दृ इति सप्तमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति वृषभगज-  
 विलसिता नाम ॥

गोवृषभायताक्षमुचल्लितपदगतिं  
 लम्बविद्यालककर्णमुदुल्लिखरितनखम् ।  
 श्यायतबाहुकं मुदुल्लबहुल्लिशरसिजं  
 श्रीर्न जहाति नित्यवृषभगजविलसितम् ॥

कोमलस्तता कवारौ दि(दी)दु ॥३२॥

यदि कवाराविति न्यासो भवति चतुर्थेऽक्षरे पञ्चमेऽक्षरे च छेदश्च भवति, भवति कोमलस्ता<sup>१</sup> नाम ।

१ Both miss read कोमलल(लि) ता.

कुल्लैः पुण्यैः कोमललता रक्तप्रवालाङ्कुरैः  
शोमायुक्ता षट्पदवृता श्यान्माधवीमाधवे ।  
नृणां लक्ष्मीश्चात्मविभवैर्भ्रजितं पुण्ये सति  
या योजन्यामेव विकृतिं सा चापि तस्यात्यये ॥

अत्यष्टिः ॥३३॥ पृथ्वी विषि(पीषी)रौ॥३४॥

यदि विषि(पीषी) राविति न्यासो भवति, भवति पृथ्वी नाम ॥

सिराविततमश्थिकाष्टमयमांसमृत्स्लेपनं  
शरीरगृहमत्र पित्तकफमूत्रविद्भाजनम् ।  
अनेकगदतस्करप्रचुरगोचरं नश्वरं  
समेत्य मतिमान् प्रमाद्यति यदेकमेभ्यो जनः ॥

हरिणी विकसौ दू ॥३५॥

यदि विकसाविति न्यासो भवति दू इति षष्ठेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति हरिणी नाम ॥

पलितवलिभिः कीर्णं तूर्णं जरैत्यजरा सती  
स्रवति गलितादम्भःकुम्भादिवायुरपीडशम् ।  
असुखमनुल रोगानीकोद्भवं च सुर(दुः)सहं  
कथमिह भवे कष्टे मिष्टा वयं तु रमामहे ॥

शिखरिणी रासिशि(शी)॥३६॥

यदि रासिशि(शी) इति न्यासो भवति षष्ठेऽक्षरे छेदश्च दू इत्यनुवर्तमान् भवति, भवति शिखरिणी नाम ॥

असावरतं यातो दशशतकरः संदृतकरः  
उदेत्येष श्रीमान् विस्तृतकिरणैः शीतकिरणः ।  
इति प्रासादस्थः सयुवतिजनो माद्यति जनः  
अजानन्नायुष्यं ह्यदितपतिती हां सपदि तो ॥

मन्दाक्रान्ता कृतहये दि (दी) दू ॥३७॥

यदि कृतहये इति न्यासो भवति चतुर्थं षष्ठेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति मन्दाक्रान्ता नाम ॥

मद्योन्मत्तान् पथि निपतितान् कुक्कुरकोष्टु(ध्रु)लङ्घ्यान्  
भ्रष्टान्छादान् वमयु (ध्रु) वशगान् मक्षिकाचुम्बितास्यान् ।

१ हासपदितौ B., हासपदितौ A',

२ Both mss. read कृतहये in the Sutra as well as the Bhasya, but it must be dropped.

मन्दाक्रान्तस्खलितचरणान् गच्छतोऽन्यश्च वीक्ष्य  
पानागारं प्रविशति नरस्तं वयं किं वदामः ॥

वंशपत्रपतितं लुसुहि (ही) दू (दूल्) ॥ ३८ ॥

यदि लुसुहि (ही) इति न्यासो भवति दू (दूल्) इति दशमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति वंशपत्र-  
इतितं नाम ॥

व्याधिसहस्रवृष्टिततमाहिसजरमरणे  
योऽत्र भवे प्रमोदत इतश्च्यवनमगणयन् ।  
पर्वतकूटमेत्य मधुने तत इह निपतन्  
लेदि स वंशपत्रपतितं मधुलवमणुकम् ॥

इति रत्नमञ्जूषिकायां छन्दोविचित्यां भाष्यतः षष्ठोऽध्यायः ॥

# सप्तमोऽध्यायः

धृतिः ॥१॥

धृतिरित्यधिकारः । किमर्थोऽयमधिकारः ? छन्दोऽक्षणाथम् ।

कुसुमितलता वेष्टिता मालिनये दुदू ॥२॥

यदि मालिनये इति न्यासो भवति पञ्चमेऽक्षरे षष्ठेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति कुसुमितलता-वेष्टिता नाम ।

राज्यं चक्राङ्कं नव च निषयो देवयोग्याश्च भोगाः

सैषा संपूर्णा रथचरधृतधीरपि प्राप्तनाद्या ।

वातेनोसाता कुसुमितलता वेष्टिता -मालतीव

प्रायो नान्येषां श्वसनपवनाघातमात्रासहानाम् ॥

वाचालकाञ्ची कौसेती दे ॥३॥

यदि कौसेताविति न्यासो भवति दे इति एकादशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति वाचालकाञ्ची नाम ।

नीवीदीपित्यलीला प्रविलसद्वाचालकाञ्चीगुणाः

अन्तर्वेवत्राङ्गुलीभूतहसना नेत्रान्तकान्तेक्षणा ।

या नार्यस्तत्र कार्या नच मतिं कामोयमेत्येव ते

शिष्टा ह्याचक्षते शास्त्रमतयो वां वञ्चनां काञ्चनम् ॥

अतिधृतिः ॥४॥ शार्दूलविक्रीडितं मनो(नौ)वे तौ दै ॥५॥

यदि मनो(+वे)ताविति न्यासो भवति दै इति द्वादशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति शार्दूल-विक्री(+वे)तं नाम ॥

पर्जन्यः पिशितं प्रवर्षति न तत् प्रोद्दिश्यते भूतले

. वृक्षा मांसफला भवन्ति न, न तत्प्रस्थन्दते पर्वतात् ।

सत्त्वानां विकृतिः न चापि पिशितं प्रादुर्भवत्यन्यथा

हत्वा प्राणिन एव तत्, भवति हि प्राणैः सदा वर्जितम् ॥

वायुवेगा मरुपिनौ ॥६॥

यदि मरुपिनौ इति न्यासो भवति दै इत्यनुवर्तनात् द्वादशाक्षरे छेदश्च भवति, (भवति) वायुवेगा नाम ॥

मान्धातैल्ययातियातिनहुषा गिरय इव स्थिताः  
 नानादिग्गतवायुवेगनिहतदुमन्तृणराजिबत्  
 तां तां प्राप्य दशां निपेतुरचिरात् कृतसुकृतक्षयाः  
 तस्मात्पूर्वकृतं पुरैति निधनं ब्रजत तपोवनम् ॥१॥

माघवीलता कौलिनि(मी)नौ दृ ॥७॥

यदि कौलिनि(मी)नाविति न्यासो भवति दृ इति सप्तमे अक्षरे छेदश्च भवति, भवति माघवीलता नाम ॥

वेद्या दृश्या प्रमत्तान् भ्रमरगणानिव माघवीलता  
 बध्वा(दध्वा)गाढोपगूढं हरिणगणानिव वागुरा वने ।  
 आप्नास्या(दाया)र्थं तु तेषां यदि रमितप्रणिनो जरायुतात्(न्)  
 निस्सारत्वं विदित्वा त्यजति शिशुनिव वानरी लघून् ॥

कृतिः ॥८॥ दीपिकाशिखा सिचिह्ला(ह्लौ)दिदू ॥६॥

यदि सिचिह्लाविति न्यासो भवति दिदू इति तृतीये षष्ठेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति दीपिका-  
 शिखा नाम ॥

पण्डितजनसहवासो जनयति मतिमुत्तमां नृणाम्  
 काञ्चनगिरिवरपाश्र्णे भवति परभृतोऽपि तत्प्रभवः ।  
 दुर्मतिजनसहवासः प्रद्यमयति मतिं सतामपि  
 मारुत इव सुसमृद्धां विपुलविमलदीपिकाशिखाम् ॥

सुवदना यशिवानि(नी)दृ ॥१०॥

यदि(-+य) शिवानि(नी) इति न्यासो भवति दृ इति सप्तमेऽक्षरे छेदश्च भवति (भवति)  
 सुवदना नाम ॥

शीर्षा बीजेन तुल्या इति किल दक्षना ओष्ठौ च विगतौ  
 केशा भूमौ विकीर्णाः कुवलयसदृशे नेत्रे च विकृते ।  
 चारु रग्मानिभोरु स्वजघनफलकौ स्वरथौ पृथुगती  
 गृध्रो गोद्यं शरीरं यदि किरति तदा सैषा सुवदना ॥

प्रकृतिः ॥११॥ स्रग्धरा कौमिहये दृदृ ॥१२॥

यदि कौमिहये इति न्यासो भवति सप्तमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति स्रग्धरा नाम ॥

चित्रं संचिन्त्य तैस्तैः पथिभिश्चरभुजैः शत्रुवर्गं निहत्य  
 भोगान्भुत्स्वा यथेष्टं ललितयुवतिभिः यौवने रञ्जयित्वा ।

वार्द्धि(र्द्ध)क्येहं करिष्ये तप इतिविमतेस्तर्कितं सांप्रतं नु  
आपत्याहृत्यकालो नयति सममुभौयात याभाभिकोऽपि ॥

ए इति वर्तमाने पुनः ए द्रप्रहणं ज्ञापकं छन्दसः उत्तरं न गच्छति उभयच्छेदाधिकार इति ॥

**कथा द्वि(द्भि)गतिः मौनहूसौ ॥१३॥**

यदि मौनहनुशाविति न्यायो भवति ए इत्यनुवर्तनात् सप्तमे सप्तमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति कथागतित्नाम ॥

मूको वचःप्रवृत्तिः ।मनमचरणोऽवलोकनभन्वकः  
भोत्रेन्द्रियेण हीनः भवणमभिहितः प्रकीर्णकथारसैः ।  
पक्षी प्रद्वनपक्षः खगमनगुदधी गतिं स शिलाप्लवः  
कर्तुं यथा न शक्तो न सुकृतरहितः तथा सुखमाप्नुयात् ॥

**ललितविक्रम(मः)स्तितितौद(द्वल्ल) ॥१४॥**

यदि स्तितिताविति न्यायो भवति ए(द्वल्ल)इति दशमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति ललितविक्रमो नाम ।

एलक्यानकृत्रिमगजेगतेर्ललितवे(वि)क्रमः शैशवः  
गत्तगजेन्द्रवाजिचरणैरमा(गा)च्चरणविक्रमो यौवनः ।  
एष जयानिरीडितजयः तवाद्य ललविक्रमः स्थाविरः ।  
एहि वनं पुरेति चयकृत्न ते पुरुषविक्रमो ह्यन्तकः ॥

**प्राकृतिः ॥१५॥ भद्रकष्टुत्तं भिषिषिषि(भीषीषीषी) द्वल्ल ॥१६॥**

यदि भिषिषिषि(भीषीषीषी)इति न्यायो भवति द्वल्ल इति दशमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति भद्रकं नाम ॥

पादकरोदराधरकृतोदधोरि च पराजयः किमु पुनः

●काकिणिकान्त एव भवता वृकोदरवरे पतन(न्)स्वइत्ये ।

यस्य पराजयेन सततं जयोपि च विनाशये(+यु)रिति वै

तन्मनुजाविदेव पपि यः कथं स लभतेऽणुभद्रकमपि ॥

**दीपाचिः किरिताता(कीरितिलौदै) ॥१७॥**

यदि कि(को)रितिळा(लो)इति न्यायो भवति दै इति द्वादशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति दीपाचिः नाम ॥

श्रानेकभवार्जितोरसुकृतपसादजनितः सुदुर्लभः

दीपाचिस्त टि (डि) दिन्द्रचापजलदस्वस्सलिलबुद्बुदोपमः ।

आशुध्वंसितया तमेत्य नृध्वं चिरं न च विळम्बितुं क्षम-

मभ्याबाधसुस्वापवर्गमवने स्वरां कुरु च जैनभाष्य ॥

विकृतिः ॥१८॥ वृन्दारकं रि ति तौ ॥१९॥

बदि रि ति तौ ताविति न्यासो भवति, भवति वृन्दारकं नाम ॥

लकृन्मद्जलाद्रंगण्डमदगन्धहस्तिकरद्रक्तपानोचितः

मुगेन्द्रनखवज्र दारुणकरुक्षवधोमुखो व्याघ्रवृन्दारकः ।

जरा मुदितनष्ट ××बलवीर्यमानावलेपो वराकः पुनः

स भक्षयति दर्तुरान् मृगगणैरवक्षिप्यमाणः शृगालादिभिः ॥

अश्वललितं वि षि षि षि ( वी षी षी षी ) दे ॥२०॥

यदि वि षि षि षि ( वी षी षी षी ) इति न्यासो भवति दे इत्येकादशाक्षरे छेदश्च भवति, भवत्यश्वललितं नाम ॥

अवनितलप्रतिष्ठितपदस्समप्रतनुताम्रपुष्पितनखः

विपुलललाटकर्णनयनः प्रसन्नतनुरोमशोभिततनुः ।

दिवसकरांशुवाहदशनो गिरिस्थलसुसंहतायतभुजः

कुलबलदुर्गतोऽपि पुरुषः प्रशास्ति किल राज्यमश्वललितम् ॥

मन्द्रक्रीडा काशि हिविट ( वीट्ट ) ॥२१॥

यदि काशि हिवि ( वी ) इति न्यासो भवति ट ( ट्ट ) इत्यष्टमेऽक्षरे छेदश्च भवति, (भवति)मन्द्र-  
क्रीडा नाम ॥

बिद्युन्मद्गन्मत्तारेखा सुरपथनुतविततजलधररवः

सस्यश्यामः शैलाद् दुर्गे धृतमुपलषिषरनिपतितसलिलः ।

वृक्षाकम्पी चण्डो वायुः परिपतितहृषितशिखिरुतसहितः

फेनैः शुबलैः कीर्णो नद्या नवसलिलचपलसमुपहततटः ॥

संकृतिः ॥२२॥ तन्वी सहि(ही) सृहे दै ॥२३॥

यदि सहि(ही) सृहे इति न्यासो भवति दै इति द्वादशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति तन्वी नाम ॥

चापनतभूः समसितदशना बर्हिणचातकशुकसदृशाक्षी

वृत्तमहोर(रु) घनपृथुजयना मृदसितायतसमकृशकेशी ।

संयतपार्ष्णिस्तनुमुखचरणा सक्षमतनूदहततनुजङ्घा

सा किल तन्वी मृदुकरचरणा स्यादिह केवलमभनिपपत्नी ॥

विभ्रमगतिः किषि(कीषी) शसौ ॥२४॥

यदि किषि (कीषी) शसाविति न्यासो भवति दै इति अनुवर्तनात् द्वादशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति  
विभ्रमगतिनाम ॥

येषा कुष्टचिकारपामकिटिपक्लान्नसवत्' 'रितरक्तकलेषरा  
 येषा जीर्णकुलीरवत्प्रद्योयिळा सुक्तौष्ठसन्ध्यस्थिजालविरातता ।  
 येषा ग्रन्थनिकृष्टकूजितशिरा सर्वाङ्गमेदद्विहापिधिताःतरा  
 तामिः प्राणवहा न यान्त्यपगति भूक्षेपणाभिहृता नरबुद्धयः ॥

**अभिकृतिः ॥२५॥ क्रीञ्चपदं लेलेविविवि(वी)द्वल्ल(द्वल्ल) ॥२६॥**

यदि लेलेविविवि(वी) इति न्यासो भवति दल्ल (द्वल्ल) इति दशमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति  
 क्रीञ्चपदं नाम ॥

यजिनगीतं स्पष्टपदार्थं गणधरविरचितमुद्बुविद्यदपदं  
 तत्त्वविभागव्यक्तिगमीरं मुनिपुणवद्बुविधनयशतवहनम् ।  
 स्वार्थविशेषध्यानपुराणं क्षपयति मलमपि जनयति पटुतां  
 तद्भुवनैकश्रोतिरुदारं श्रुतमपरमयतु मम मतिमिभिरम् ॥

**हन्स(हंस)पदा यीयीविविवि(वी) ॥२७॥**

यदि यियि(यीयी)विविवि(वी)इति न्यासो भवति दल्ल(द्वल्ल)इत्यनुवर्तनात् दशमेऽक्षरे छेदश्च भवति,  
 भवति हंसपदा नाम ॥

वीरं विमलं देवं त्रिदशासुरनरवरपतिगणधरमहितं  
 रागाद्ययुतं रोगैर्वियुतं विजननमरणममरणममलम् ।  
 हेमाभतनुं कामारिजितं विवि भुवि च विततसुविमलयज्ञानं  
 नत्वा जिनपं मर्त्यां लभते शिवपदमपगतभवभयसुखं तत् ॥

**उत्कृतिः ॥२८॥ अपवाहं किविविविवा दो ॥२९॥**

यदि किविविविवा इति न्यासो भवति दो इति त्रयोदशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति अपवाहं नाम ॥

वाक्यं मे शृणु भरतनु निगदितमिह तव हितमतिसुलभं शश्वत्  
 कामेषु प्रचलितमतिकृदाशरमपि सुखकरमपि बहुकारुष्यम् ।  
 दासं स्वं स्वजसि रिपुमिव सकलविमलघातिनिभमुखमुशीलं ते  
 सख्यं मे यदि गणयसि न तु मम हितमिह खलु सखि तव मोक्षत्वम् ॥

**आपीलं सिवियविवि(वी)दो ॥३०॥**

यदि सिवियविवि(वी)इति न्यासो भवति दो इति त्रयोदशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति आपीलं नाम ॥

मानवपतिरुबलनयसत्त्वो भूत्वा भुवमनुभवति च सकलां  
 भासुरसुरवरपरिषदुपेतो नाकालयगणपतिरपि भवति ।  
 मोक्षकमनुपममपगतघोकापीलं सुखमविचलमपि लभते  
 धार्मिक इति तव धृतिमतिचेष्टा धर्मे कुरु बुध जिनबुधकथिते ॥

भुजङ्गविजृम्भितं काशिहि मुनौ दृ(दृ)दे ॥३१॥

यदि काशिहिमुनाधिति न्यासो भवति दृ(दृ)दे इत्यधमे एकादशेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति भुजङ्ग-  
विजृम्भितं नाम ॥

नागेनागे नागेनागे स्थलममति विगलितमदे प्रमुद्युष्यति धर्मगे  
शेषेदोषे शेषेदोषे सितजलदपटहनिनदैः सदा किल बोध्यते ।  
तस्यैतस्यै तस्यैतस्यै वितमसि विरजसि परिणायबिन्दुनिभामये  
हेतौहेतौ हेतौहेतौ कथं किमुत भवति भवतो रजस्तमसोरगुणः ॥

तन्न अ(ष्टा)धिका मध्यमतिच्छन्दः ॥३२॥

यदि भुजङ्गविजृम्भितमेव मध्य(ध्ये)लघुभिरभ्य(ष्टा)धिकैर्दुक्तं भवति, भवति अतिच्छन्दो नाम ॥  
एवं प्रोक्तुः क्रौञ्चस्थामं मणिकनकरजतपटलघाशिक्रिणसदृशं शि(शि)ताम्बुदसंनिभम्,  
क्रीडाभूमिः गन्धर्वाणां गजगवयश्चरभरुष्टुपतशकुनिचरितं प्रतिष्ठितकिन्नरम् ।  
भिन्नं शस्या लीलावत्या रकुटकुटजतिरुक्कलदिरध्वविषमशिखरं लतागृहसंस्कटम्,  
स्कन्धस्वेदैः देवैः दृष्टो हितमिव पिषतु तरुणरविषदशवदनो मयूरवरध्वजः ॥

चण्डवृष्टिप्रयातं हितः ॥३३॥

आदित एव षड् लघवो भूत्वा पुनर्मध्यलघुत्रिका भवन्ति, भवति चण्डवृष्टिप्रयातं नाम ॥  
नदति मदशिखी न भा भाति विद्युत्कृताजलमालोशि(च्छ्रि)ताम्बोदकीर्णं नभः  
रकुटमदजननः प्रवात्यम्बु लञ्च द्यूकादम्बरं(?) वारिपूर्णाध्वगो मासतः ।  
जलधरसमये न मया हिंसा प्रवात प्रसीद प्रियैरास्थितोऽप्यग्रतः  
नवजलधरवृन्दमालोक्य मा काङ्क्षते तत्परः षण्डवृष्टिप्रयाते ॥

आह च एतावन्तः मध्यलघुत्रिका इत्यनुक्तत्वात् न ज्ञायन्ते इत्यत्रोच्यते । अतिच्छन्द इत्यनुवर्तनात्  
तत्रत्यपरमित्ताभिधानाच्च यावद्भिर्मध्यलघुत्रिकैरादिस्यैः षड्भिः लघुभिरचोक्तितरितक्रान्तो भवति सप्त-  
भृतिभिः मध्यलघुत्रिकैः षड्भिर्लघुभिश्च ।

गाथाऽप्रसिद्धा ॥३४॥

अस्मिन् शास्त्रे त्रितयं सिद्धं जातयो नियता अपि छन्दांसि च इति । नियतमात्रा अनियताक्षराः  
॥तयः । यथाहुः आर्याद्या ( : ) नियतमात्राणि नियताक्षराणि यानि यथा तानि उद्गतप्रभृतीनि । नियता-  
क्षराणि अनियतमात्राणि छन्दांसि तानि गायत्रीप्रमुखानि च । तस्मात् त्रितयादन्वया यो इत्येत स्लोकैः सा  
गाथा नाम भवति । यथा—

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखा ।  
माद्रीसुतौ पुष्पलमुद्गिरेव मूलं कृष्णो बह्व च ब्राह्मणाश्च ॥

इति रत्नमञ्जूषिकायां छन्दोविवित्यां भाष्यतः सप्तमोऽध्यायः ॥

## अष्टमोऽध्यायः

अत्र गायत्र्यादिब्रह्मकृतिपर्यवसानेषु तनुमध्यादिभुजङ्गविजृम्भितपर्यवसानानि वृत्तानि उपदिष्टानि । किन्तु एषु छन्दःषु तान्येव वृत्तानि अन्यान्वयपि सन्तीति । अत्रोच्यते । अन्यान्वयपि सन्ति तान्येतानि सन्तीति ज्ञापनार्थमयमुपायो विधातः ॥

मर्धे ॥१॥ न रूपे ॥२॥ नि द्वे ॥३॥ मि कृतिः ॥४॥

यस्य कस्यचिच्छन्दसः समवृत्तानां जिज्ञासायां तच्छन्दसः पादाक्षराणि न्यस्य अर्धं त्यक्त्वा मर्धेति गुहं न्यस्य, यत्रादौ राक्षिरर्धं न ददाति तत् रूपं त्यक्त्वा नरूपे इति लघुं न्यस्य एवं पुनः पुनः ।

अन्त्यरूपम् ॥५॥

तेषां न्यस्तानां गुहलघुनामन्त्ये अधस्तादेकं रूपं न्यस्य प्रतिलोमम्, अन्त्ये यदि लघुस्तत्र लघुनि (+नि) द्वे इति द्विगुणं कृत्वा यदि गुहस्तत्र गुरौ मि कृत्तरिति तावत्कृत्वः तच्छन्दसः समवृत्तान्येतावन्ति इति निर्दिशेत् । अत्राह । कथमेतदवगम्यते ? पादाक्षराणि एव क्रियते गृहीत्वा न सर्वाक्षराणि क्रियन्ते इत्यत्रोच्यते । पादे गायत्री दू अक्षरा इति प्रतिपादाक्षरपरिमाणमुक्तं पुनस्तानि चतुर्गुणितानि छन्दोक्षराणीति लक्षणतोऽवगम्यते । तत्र लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव इति पादाक्षरेष्वेव प्रसिद्धिः । मर्धे नरूपे निद्वे मि कृतिरित्येतानि चत्वारि सूत्राणि युगपद् व्याख्यातानि ॥

तत्समम् ॥६॥

तान्येतानि अनेन क्रमेणाधिगतानि तस्मिन् तस्मिन् छन्दसि प्रवृत्तानि भवन्ति ॥

द्विः परस्य ॥७॥

यस्य कस्य छन्दसः समवृत्तानि द्विगुणितानि तस्मात्परस्य छन्दसः समवृत्तानि भवन्ति । तत्कथम् ? जगत्यां समवृत्तानि चत्वारि सहस्राणि षण्णवत्युत्तराणि तानि द्विगुणितानि अष्टसहस्राणि शतद्वानवत्युत्तराणि अतिजगत्याः समवृत्तानि भवन्ति ।

हृकृत्यूनं पूर्वेषाम् ॥८॥

ह इति पारिभाषिकसंज्ञा अष्टानां कृतिरिति लौकिकी । तावत्कृत्वः कृताः चतुःषष्टिरित्यर्थः । यस्य कस्य छन्दसः समवृत्तानि चतुःषष्ट्या विद्युतानि तस्मात्पूर्वेषां सर्वेषां गायत्र्यादीनां समवृत्तानि । कथम् ? जगत्यां समवृत्तानि चत्वारि सहस्राणि षण्णवत्युत्तराणि तेषु चतुःषष्टि व्युदस्य शेषं चत्वारि सहस्राणि द्वाविंशत्युत्तराणि गायत्र्यादीनां समवृत्तानि त्रिष्टुपर्यवसानानां भवन्ति ।

समकृतिरर्धसमं च ॥९॥

समानि तानि तावत्कृत्वः कृतानि समार्धसमपिण्डो भवति । ततः समार्धसमानि व्युदस्य शेषाणि विषमाणि भवन्ति । संख्यासमन्त्यनन्तरं प्रस्तार उच्यते । अनन्तरं नष्टमुच्यते । विज्ञातगुहलघुकस्य वृत्तस्य संख्या-

मात्रेण गुरुलघुविन्यासनिर्णयो नष्टः । आह । गायत्र्यादीनां समवृत्तानि यानि गणिततोऽवगतानि तानि येन क्रमेण प्रत्यक्षतः उपलभ्येरन् स चापि क्रमोऽस्ति ? अस्ति इत्युच्यते । पृथिवीं समतलां कृत्वा परस्परविशिष्टगुरु-  
लघुविन्यासानि प्रसार्य दृश्यान्वयेन क्रमेण ।

भिनत्यधोधः ॥१०॥

मिति वक्रां रेखामाख्यं निति ऋज्वीं चाधोधः एकाग्रतरिते लेख्यं यावत्संख्यपरिमाणमयं सर्ववृत्तानां  
प्रथमाक्षरविन्यासः ।

द्विद्विरितिः ॥११॥

द्वितीयाक्षरस्थाने वके द्वे द्वे ऋ(ज्वी)द्वे इत्यधोधः प्रस्तारयेत् । ततश्चतुतीयाक्षरस्थाने वक्राक्षतप्तः  
ऋज्वीश्च आछन्दसः पादाक्षरपरिसमाप्तेरेष प्रस्तारक्रमः । अनेन प्रस्तारक्रमेण तानि वृत्तानि परस्परविशिष्टानि  
प्रत्यक्षतो दृश्यन्ते । अथ नष्टमाह ।

नर्धे ॥१२॥ सैकस्य म् ॥१३॥

इमे द्वे सूत्रे सद् व्याख्यास्यामः । तेषु प्रस्तारितेषु मध्ये यद्येकं विनश्यति तदेतावतिथमिति संख्यां ज्ञात्वा  
वन्यक्षराणि न्यस्य अर्धं त्यक्त्वा नर्धे इति लघुं न्यस्य, यदा र्धं न ददाति तदा रूपं प्रक्षिप्य अर्धं त्यक्त्वा  
सैकस्य मिति गुरुं न्यस्य एवं पुनः पुनः यावत्छन्दसः पादाक्षरपरिमाणं तत्तावतिथं वृत्तं तदङ्गिवन्यासं भवति ।  
अथ उद्दिष्टमाह । कश्चिद् ब्रूयात् । किञ्चिद्भूतमुद्देश्यमेतत् वृत्तमेतस्मिन् छन्दसि कथितमिति । तद्वृत्तं  
प्रसार्य (+ अ)न्ते तदधस्तादेकमक्षरं यस्य अनेन क्रमेण कुर्यात् ।

नि द्वे ॥१४॥ मि चैकं त्यजेत् ॥१५॥

तमक्षं प्रतिलोममुच्येत् लघौ लघौ द्विगुणितं कुर्यात् । तथा गुरावपि । किञ्चान्यत् । गुरावेकमक्षरं  
त्यजेच्च यदागतं तावतिथं वृत्तं छन्दःप्रस्तारमिति निर्दिशेत् । सूत्रद्वयं युगपद्याख्यातम् ।

ददादि ॥१६॥

इति यथाक्षरं एकद्वित्रीणि इत्येवमेकाद्येकोत्तरं यावच्छन्दःपादाक्षरपरिमाणं न्यस्य ततः संख्यां ज्ञात्वा  
तावन्यक्षराणि । सपूर्वमनन्यः तेष्वेकारादिकेषु राशिषु पूर्वं पूर्वमविनष्टमेव परस्मिन्परस्मिन् प्रक्षिप्य वर्जयित्वा अन्यं  
अन्यं केवलं गृहीत्वा अतोऽन्यत्र स्थापयित्वा पुनश्च पूर्वं पूर्वं परस्मिन्परस्मिन् प्रक्षिप्य अन्यमन्यं केवलं गृह्येत्  
पूर्वपदं स्थापयेत् ॥

तद्ददादिनः ॥१७॥

तथे(थे)तां राशयोऽप्यागता एकलघुद्विलघुप्रभृतयो भवन्ति । आह । संख्यादीनां पृथक् पृथक् अनुक-  
माण्युपदिष्टानि किं तथैवाक्रमेरन्, आहोस्त्वदन्योऽप्युपायोस्ति येनैकत्वेऽनुपक्रमोस्तीति । अस्तीत्युच्यते' ।

## द्वाद्द्विः ॥१८॥

पूर्वकं न्यस्य तत्प्रतिराशयो द्विः कार्याः । एवं प्रतिराशयो द्विगुणिताः कार्याः राशयस्तावन्तो यावन्ति पादाक्षराणि । तत् कथम् । पूर्वमेकं न्यस्य तत् प्रतिराश्यादिकृत्वा द्वे द्विः कृत्वा ततः अष्टौ षोडशद्वात्रिंशत् इति । गायत्रीपादाक्षराणि षडिति षड् राशयः कार्याः ॥ इदानीं षड्गोपायो विधास्यते । कथम् ?

## सैकं यत्र यावत्तत्र तावतिथे नः ॥१९॥

ते एकादिका राशयः पूर्वं स्थापिता अस्यस्थापनीयाः । यस्मिन् यस्मिन्स्थाने स्थिता एको वा द्वौ वा त्रयो वा चत्वारि वा पञ्च वा षडपि वा एकरूपसंज्ञितायां संख्या भवति । तावतिथे वृत्ते तद्व्यवहो भवति । तत्कथम् ? आद्यक्षरस्थाने एकं प्रक्षिप्य द्वे ततो द्वीति वृत्ते आद्यक्षरं ल्घ्विति निर्दिशेत् । तथा तथा प्रथम-द्वितीयराशि त्रीणि सैकानि चत्वारि ततश्चतुर्थप्रथमद्वितीयाक्षरे लघू एवमाप्रस्ताशकनानालेयमिह संख्यादीनां विन्तनानो षडपि राशयः सहिता एकरूपयुतश्चतुःषष्टिर्भवन्ति ॥ ततश्च षष्ठं वृत्तं सर्वलघ्विति द्विद्वम् । तेन सर्वलघ्ववसानात् वृत्तानां चतुःषष्टिरिति वृत्तसंख्येपलब्धा लघ्वक्षरसायान् षडपि राशोनाभित्य प्रक्षेपभूतेनैकवृत्तरूपेण प्रथमलघुं प्रस्तारयेत् ॥ पुनः प्रथमाक्षरे स्थानि एकस्मिन्प्रक्षेपभूतं प्रक्षिप्य संजाते द्वे ततो द्वितीये प्रथमं लघुं प्रस्तारयेत् । पुनः द्वितीयाक्षरस्थाने ये अक्षरराशावेकं प्रक्षिप्य त्रीणि ततस्त्वृत्तीये लघुं प्रस्तारयेत् । पुनः प्रथम-द्वितीयराशिद्वये रूपं प्रक्षिप्य चत्वारि ततश्चतुर्थं प्रथमं द्वितीयं लघु प्रस्तारयेत् । एवं पञ्चमाद्यानि यथा भवन्ति तथा प्रस्तारयेत् ।

इदानीं लघुगुरु लघुगुरु इत्येवं न्यासवृत्तं कथमिति प्रष्टुष्टे एतद्वृत्तं प्रथमचतुर्थपञ्चमराशयः सहिताः सहैकरूपाः षड्विंशतिरिति निर्दिशेत् । एतदुद्दिष्टम् । अयेदानीं षड्विंशतिः कीदृग् इति पृष्टे प्रथमचतुर्थ-पञ्चमराशयः सहिताः सहैकरूपाः षड्विंशतिर्जातेति प्रथमं च ।

## श्रीमदनन्तनाथाय नमः ।

लग्नक्रियां सुधीः कुर्यात्तत्र येऽङ्काः स्थिताः क्रमात् ।  
 तत्तदङ्कपसंख्यातान् कोष्ठांस्तेषां पुरो लिखेत् ॥१॥  
 सर्वगुर्वन्तसविषकोष्ठे तत्रैकमालिखेत् ।  
 तमेव द्विगुणं कृत्य तस्याधो द्वयङ्कपालिखेत् ॥२॥  
 द्वयङ्कं च द्विगुणीकृत्य चतुरङ्कमथालिखेत् ।  
 तत्रैकमपनीयोर्ध्वपङ्क्तौ त्र्यङ्कमुपक्षिपेत् ॥३॥  
 त्र्यङ्कं च द्विगुणीकृत्य षडङ्कं तदधः क्षिपेत् ।  
 तत्रैकमपनीयोर्ध्वं पङ्क्तौ पञ्च लिखेत्ततः ॥४॥  
 चतुरङ्कद्विगुणनात् अष्टौ च तदधः क्षिपेत् ।  
 तत्रैकपनयात् सप्तप्यूर्ध्वपङ्क्तौ निवेशयेत् ॥५॥  
 एवं द्विगुणितान् पञ्चादिकानन्तानधः क्षिपेत् ।  
 तानैवैकोनकान्पूर्वपङ्क्तौ कुर्वाणमुं विधिम् ॥६॥  
 लग्नक्रियाङ्कसंज्ञोद्देशसंख्या संपूर्णतो विधिम् ।  
 कुर्वात तावदङ्कैश्च कोष्ठाः सर्वे स्युरङ्किताः ॥७॥

प्रस्तारो मेवनामायमत्रच्छन्दोद्भवं भवेत् ।  
 एकलघ्वाटिवृत्तानाम् उत्पत्तिस्थाननिर्णयः ॥८॥  
 एकद्वयादिलगक्रियाङ्गसमसंख्यानेषु कोष्ठान्तरे-  
 ष्वेकादीन् द्विगुणानघो विरचयेसांश्रौर्घमेकोनकान् ।  
 इत्यन्तावधि मेवरेष महितः स्याद्दर्शमानाङ्गयः  
 छन्दस्येकलगादिवृत्तजननस्थानं स्विह ज्ञायते ॥९॥  
 एकद्वयादिलगक्रियास्रगणनामानप्रमाणालयैः  
 मेवकमाघरवद्विरच्य खटिकोल्कीर्णैरथाद्यालये ।  
 वृत्तं न्यस्म तदादिमं द्विगुणयंस्तथाप्यधः स्थापयेत्  
 एकोनेन तदोपरि प्रतिलिखेदेवं हि मेवक्रिया ॥१०॥

खण्डमेवप्रस्तारो यथा-

सैकामेकगणोज्ज्वलामभिमतच्छन्दोक्षरागारिकाम्  
 एकं श्रेणिमुपक्षिपन्नधरतोऽप्येकैकहीनाश्च ताः ।  
 ऊर्ध्वं द्विद्विगृहाङ्गमेरुनमघोऽधः स्थानकेष्वाल्लिखेत्  
 एकच्छन्दसि खण्डमेवरमलः पुत्रागचन्द्रोदितः ॥११॥

एतत्तद्योक्तक्रमेण प्रस्तारे कृते विवक्षितच्छन्दसः लगक्रियया सह ततः पूर्वांरिथतसकलच्छन्दां लगक्रियाः  
 सर्वाः समायान्तीत्यर्थः ॥

## प्रस्ताराः-

चतुर्थं छन्दः

१	१						
४	२	३	१	९			
६	४	६	७	१०	११		१३
४	६	१२	१४	१५			
१	६						

अधमेरुः

१	४	६	४	१
१	३	३	१	
१	२	१		
१	१			
१				

पञ्चमं छन्दः मेरुप्रस्तारः

१	१								
१	२	३	५	९	१७				
१०	४	६	७	१०	११	१३	१८	१९	२१
१०	८	१२	१४	१५	२०	२२	२३	२६	२७
५	१६	२४	२८	३०	३१				
१	३२								

## NOTES.

[Notes:—In the graphical representation, I stands for a short letter and S for a long one.]

### ADHYĀYA I.

Sūtras 1-10: These explain the Saṁjñās or the technical terms employed by our author to represent the eight Akṣara Gaṇas or groups of 3 letters each, first employed for scanning a line of Varna Vṛttas by Piṅgala. Our author uses a double set of these terms one consisting of consonants and another of vowels alone. The last vowel and the last consonant in each of the first eight Sūtras stand for the metrical group of short and long letters represented by the word of which the Sūtra consists. Thus क् or आ stands for a group of three long letters and so on (see Sūtras 9 and 10). Similarly, the 2nd consonant in each of the first four Sūtras and the 1st consonant in each of the first two Sūtras stand for a metrical group of short and long letters which is represented by that part of the Sūtra which ends with that consonant. Thus व् stands for a group of two long letters and म् stands for a single long letter (see Sūtra 10 and commentary). The following is a full list of such terms with their equivalents employed by Piṅgala wherever possible:—

क्	or	आ	=	SSS	=	म्	of Piṅgala				
व्	or	ए	=	ISS	=	व्	„ „				
त्	or	औ	=	SIS	=	त्	„ „				
प्	or	ई	=	IIS	=	प्	„ „				
श्	or	अ	=	SSI	=	श्	„ „				
व्	or	उ	=	ISI	=	व्	„ „				
स्	or	ऋ	=	SII	=	स्	„ „				
ह्	or	इ	=	III	=	ह्	„ „				
व्			=	SS;	र्	=	IS; ल्	=	SI; व्	=	II;
म्	=	S	=	म्	of Piṅgala;	न्	=	I	=	ल्	of Piṅgala.

The last two symbols, namely those for single long and short letters, clearly show the influence of Piṅgala's मगण and नगण representing all long and all short letters respectively.

S. 11:—Even a short letter (२) is treated as a long one (३) when it is followed by a conjunct consonant (संयोग). According to the commentator, the word ऋषि shows that the rule is optional, so that sometimes, the short letter does not become long even when followed by a conjunct consonant. It also suggests that a long letter is ordinarily equal to two short ones.

S. 12:—At the end of a line, a short letter is considered as equal to a long one metrically.

S. 13:—This however, is not applicable to short letters standing at the end of *odd* lines of the Āryā and such other metres. The illustration No. I given for Sūtra No 11 (eleven) serves also for this rule, says the commentator; for, the short letter ण occurring at the end of the 3rd line of the stanza which is in the Āryā metre is not to be considered as long.

S. 14:—The letters ॠ, ॡ, ॢ, ॣ etc. respectively represent the numbers 1, 2, 3, 4 etc. This is an important innovation introduced by our author. Earlier and later writers employ popular terms signifying a definite number such as *samudra* standing for 4, *nayana* standing for 2 and so on.

S. 15-16:—Sometimes the letter ण् is added to this letter ॠ, ॡ, ॢ etc. (thus ॠण्, ॡण्, ॢण् etc.) as a mere ornamental appendage; but this is not always done.

S. 18-19—These two Sūtras refer to the Yati, which ought to be agreeable to the ear. It always occurs at the end of a line, but sometimes even in its middle. I am unable to understand fully these two Sūtras with their Bhāṣya. It is quite likely that what is shown as the Bhāṣya by my manuscripts is a part of the Sūtras themselves, here. For a further exposition of the rules about Yati, see Halāyudha, on Piṅgala's Chandas, 6.1 (N. S. P. 3rd edition, pp. 100-103).

S. 20-24:—These 4 Sūtras enumerate the broad divisions of the Varṇa Vṛttas, beginning with Gāyatrī having 6 letters in each of its four lines and ending with Utkṛti having 26 letters in each of its four lines. It deserves to be noted that our author does not define the earlier classes of metres, i.e., those that contain from 1 to 5 letters in each of their four lines. In this he follows Piṅgala and Jayadeva. Even Bharata enumerates these five classes only

under the Prakṛta metres in ch. 36 (but not under Sanskrit metres in ch. 16) meaning thereby that they were not current in Sanskrit poetry as a rule. Prakṛta metricians, who also write on the Varṇa Vṛttas seem to have first introduced and illustrated them. Thus Virahāṅka, and probably also Svayambhū, define these five classes among the Varṇa Vṛttas. They are then followed by Kedāra and Hemacandra, by whose time their definition seems to have already come in vogue.

S. 25:—This Sūtra mentions a special term namely  $\mathfrak{r}$  for a Mātrā Gaṇa of four Mātrās. The Mātrā Gaṇas are needed for scanning the Mātrā Vṛttas like the Āryā. In making use of only one Mātrā Gaṇa, namely, the Caturmātra, our author again closely follows Piṅgala. As a matter of fact, all writers on Sanskrit prosody including Hemacandra have not made use of any other Mātrā Gaṇa in defining the Sanskrit Mātrā Vṛttas. For this and the next Sūtra, compare Piṅgala, 4. 12-13.

S. 26:—This Sūtra gives the five different kinds of the Caturmātra Gaṇas in view of the short or long letters that may be employed in them. They are:— $\mathfrak{r}$  = SS;  $\mathfrak{r}$  = II S;  $\mathfrak{r}$  = ISI;  $\mathfrak{r}$  = SII; and  $\mathfrak{r} + \mathfrak{r}$  = I, III. Three of these are already noticed among the 8 Akṣara Gaṇas, since they contain three letters each. The first and the last are new, since they contain 2 and 4 letters respectively.

## ADHYĀYA II.

Piṅgala has defined the Āryā group and the other Mātrā Vṛttas in one chapter viz. the 4th. Really speaking, Sanskrit Mātrā Vṛttas consist of three main groups, namely the Āryā group, the Vaitālīya group and the Mātrāsamaka group. Out of these, the Āryā group and the Mātrāsamaka group are groups of pure Mātrā Vṛttas, where a definite number of Mātrā Gaṇas, kept separate from each other by the avoidance of a long letter at their junction, is required. The third Group is a group of metres which are called Mātrā Vṛttas, because in them a definite number of Mātrās, and not letters are required to be employed in a line. These Mātrās, whatever their number, are not rigidly divided into a number of definite groups as in the case of the Āryā and the Mātrāsamaka. Only, there are

restrictions about the introduction or avoidance of short and long letters for representing a particular Mātrā or Mātrās.

Out of the three groups the Āryā group consists of metres of two lines while the Vaitālīya group consists of metres of four lines, out of which the 1st resembles the 3rd and the 2nd resembles the 4th. They are the Mātrā Vṛttas of the Ardhasama type. The third group i. e., the Mātrāsamaka group, on the other hand, contains metres each of which consists of 4 lines of the same type and length. Our author has separated the last two groups (of metres of four lines each) from the first group and treated them in the third Adhyāya. On the other hand, he has picked out the group of the Ardhasama Varṇa Vṛttas beginning with Upacitraka from its proper place in the midst of the Varṇa Vṛttas—In Piṅgala, they are treated after the Viṣama and before the Sama Vṛttas of four lines each—and tacked it on to the Āryā group in Adhyāya second. Evidently he has done this because in both these groups, the *full half* of a stanza, whether it consists of one line or of two, has to be defined, whereas, in all other metres, including even the Vaitālīya group, only *one fourth* of a stanza is required to be defined, together with a few peculiarities of the odd or the even lines in the case of the Ardhasama Mātrā Vṛttas, other things being common to all the four lines. Thus in the 2nd chapter of our book, the Adhikārasūtra is *urdhe*, while that in chapters 3 to 7 it is *pāde*.

S. 2-3:—In each half of the Āryā, there are seven (७) Caturmātra Gaṇas (७ः) and one half more; among these seven, only those which occupy even places (i.e.) 2nd, 4th and 6th can be of ३ (ISI) type, but those in odd places must never be so. See for the same rules Piṅgala, 4. 14-15.

S. 4-8:—The 6th Caturmātra in the first half is either of the ३ (ISI) type or of the ३ (I,III) type. If it is the latter, a new word must be commenced with the 2nd Mātrā, the earlier word being finished with the 1st. If the 7th Caturmātra (३३) be of the ३ (III) type, a fresh word must be commenced with the very first Mātrā, the earlier word being completed with the last Mātrā of the 6th Caturmātra Gaṇa. This same rule holds good in the case of the 5th Caturmātra Gaṇa (३३) in the second half of the Āryā

( पराधे ). If it is of the नि (I,III) type, a fresh word must be commenced with its very first Mātrā. In the second half of the Āryā the 6th Gaṇa ( वृण् ) is not a Caturmātra, but consists only of a single short letter ( वृ एव ). For all these rules, compare Piṅgala, 4: 16-21.

S. 9-10:—That Āryā is called Pathyā, whose odd lines i. e., 1st and 3rd consist of three Caturmātra Gaṇas only. That which is not so is called Vipulā. These two Sūtras which resemble Piṅgala 4. 22-23 furnish an interesting commentary on the controversy about the number of lines in the Āryā metre. According to these rules, if a word is finished with the 3rd Caturmātra in the halves of the Āryā, the Yati is naturally introduced there and the half becomes automatically divided into two lines. In such cases, i. e., where both the halves are thus divided into two lines each, the Āryā must be considered as a metre of four lines. But if the end of the 3rd Caturmātra does not synchronise with also the end of a word in either or both the halves of the Āryā, the Yati is not introduced at the end of the 3rd Caturmātra, since the word, which is commenced but not finished in it, must be completed before a metrical pause is allowed. It is in such cases, where a natural Yati or metrical pause is not introduced at the end of the 3rd Caturmātra owing to the incomplete utterance of a word, that the halves of the Āryā are not felt as divisible into two lines each and consequently Āryā is felt and therefore regarded as a metre of two lines. Thus then the Pathyā Āryā is a metre of 4 and Vipulā Āryā a metre of 2 lines. But since there is no compulsion about the finishing of a word at the end of the 3rd Caturmātra, the Āryā on the whole, has been regarded as a metre of two halves i. e., two lines, by the metricians, like Piṅgala and others.

It is however, noteworthy that commentators usually regard Pathyā to be the normal type and Vipulā to be the exceptional one. They therefore, regard Vipulā ( and not Pathyā ) to be of three kinds i. e. Mukha, Jaghana and Ubhaya Vipulā, according as the characteristic of the unfinished word is found existing in the 1st or the 2nd or both the halves, See Halāyudha on Piṅgala, 4:23. Both Piṅgala and our author are silent about these divisions of Vipulā, showing thereby that perhaps by their time the public opinion had not yet definitely swung in favour of the view which regarded the Āryā as a metre of four lines.

S. 11-13:—An Āryā is called Capalā when the groups ऋ (SIS), ए (ISS), ऋ (I) and औ (SIS) follow in succession after the 2nd Mātrā of the 1st Caturmātrā ( ऋँ); or in other words as it is put by Piṅgala, 4.24, when the 2nd and the 4th Caturmātras in each half are both preceded and followed by a long letter each, and are themselves of the ए or ऋ type (ISI) i.e., the जगण of Piṅgala. If this characteristic is found in the 1st half, the Āryā is called Mukha Capalā; if in the 2nd, it is called Jaghana Capalā; if in both, it is called Mahā Capalā. See Piṅgala, 4. 25-26. The last variety is not mentioned by our author expressly, nor by the commentator. Each of these three kinds of Capalā are possible in Pathyā as well as in the three Vipulās. Thus we have  $4 \times 3 + 4 = 16$  varieties of Āryā; see Halāyudha on Piṅgala, 4. 20 (N. S. P. 3rd edition, p. 51).

S. 14:—If in the second half of the Āryā, the 6th (दृण) Gaṇa is a full Caturmātra and does not consist of a single short letter, or in other words, if the 2nd half is similar to the 1st, the Āryā is called Gīti; cf. Piṅgala, 4.28. In this Sūtra, the words जघने च are to be supplied from Sūtra 13. All the rules applicable to the 6th Caturmātra, mentioned above in Sūtras 4 and 5 are also applicable here as the commentator, reminds us.

S. 15:—If the 8th Gaṇa (दृण) in the Gīti is a full Caturmātra (and not a half one), the same is called Āryāgīti. In this Sūtra, the words एणंश्चैत दृण are to be supplied from the last Sūtra, so that S. 15 literally means 'If the 6th and also the 8th Gaṇas are full Caturmātras the Āryā is called Āryāgīti'. Compare Piṅgala, 4. 31.

Other metres derived from the Āryā, like Upagīti and Udgīti (compare Piṅgala 4. 28, 29) are not mentioned by our author nor by his commentator, and strangely enough, the section on Āryā is brought to a conclusion with the Galitaka which has no connection with the Āryā nor is it a metre of two lines or halves. The only possible connecting link between the Āryā and the Galitaka is that the lines of both are made up of a definite number of the Caturmātra Gaṇas. None of the Mātrā Vṛttas from the Vaitāliya group have their lines thus composed. Really speaking, Galitaka is not a Sanskrit metre; at least it is not known as a Sanskrit metre to older Sanskrit metricians. Even Hemacandra who first mentions it, counts it among the Prakrit metres besides, according

to him Galitaka is rather a classname of Prakrit metres of a particular type. See Hemacandra, Chandonūsāsana (JBBRAS. 1943) IV. 17 ff. But the Prakrit metre which exactly corresponds to our Galitaka is Lalitā of Virahāṅka, Vṛttajāṭisamuccaya (JBBRAS. 1929) IV. 60. In any case, it is very difficult to guess the reason for which the Galitaka is regarded as a Sanskrit metre and further why it is defined at this place. The author, indeed, must have felt the incongruity of this metre coming under the 'adhikāra' of 'ardhe' and so he has added the word *pratipādam* in its definition.

S 16=A Galitaka stanza has four lines, each containing five and a half Caturmātras of any kind. The illustration by the commentator looks like a quotation.

Hereafter, in Sūtras 17-18, the author defines the Ardhasama Varṇa Vṛttas for reasons suggested above in the introductory note to this chapter. Each definition is made up of a pair of groups of symbols, the first of which gives the composition of odd lines, while the 2nd gives that of the even ones. I shall explain the definitions graphically as well as by giving the equivalent Akṣara Gaṇas according to Piṅgala's system since this is very generally known. In showing the Gaṇas, I shall use full letters in the place of consonants for the sake of convenience.

S. 17.—उपचित्रकः प, ई, व, औ; ल, उ, ष, ए (सससलग; भमभगग).  
= IIS, IIS, II, SIS; SI, ISI, ISJ, ISS. See Piṅgala,  
5. 32.

S. 18.—दुत्तमध्याः ल, उ, ष, ए; ह, उ, ष, ए (भमभगग नजजय).  
= SI, ISI, ISI, ISS; III, ISI, ISI, ISS. See Piṅgala,  
5. 33.

S. 19:—वेगवतीः न, उ, ष, ए; ल, उ, ष, ए (सससग; भमभगग).  
= I, ISI, ISI, ISS; SI, ISI, ISI, ISS. See Piṅgala  
5. 34.

S. 20:—भद्रविद्युत् : य, ई, र, ए; क, ई, र, ए (तञ्जग; ससजगग).  
= SS, IIS, IS, ISS; SSS, IIS, IS, ISS. See Piṅgala,  
5. 35.

S. 21:—हेतुवतीः न, उ, स, ए; ल, उ, स, ए (सजसग; भसजगग).  
= I, ISI, SII, ISS; SI, ISI, SII, ISS. See Piṅgala,  
5. 36.

S. 22:—आख्यायिकाः ष, अ, र, ए; ष, अ, र, ए (ततजगग; जतजगग).  
= SSI, SSI, IS, ISS; ISI, SSI, IS, ISS. See Piṅgala,  
5. 37.

Both the mss. drop the illustration of Ākhyānikā and the definition of Viparīta Ākhyānikā. The verse यदाह etc. is an illustration of the latter, for whose definition see Piṅgala, 5. 38.

S. 24:—हरिणीप्लुताः व, ऋ, स, औ; इ, ऋ, स, औ (ससजगग; नभभर).  
= II, SII, SII, SIS; III, SII, SII, SIS. Compare  
Piṅgala, 5. 39.

S. 25:—मालभारिणीः व, ऋ, त, ए; ष, ऋ, त, ए (ससजगग; सभरय).  
= II, SII, SIS, ISS; IIS, SII, SIS, ISS. See Hemacandra, N.S.P. edition, 1912, 3. 17. This is not mentioned by Piṅgala or Kedāra.

S. 26:—अपरवद्वः व, इ, ष, औ; इ, उ, ष, औ (नवरलग; नजजर).  
= II, III, ISI, SIS; III, ISI, ISI, SIS. See Piṅgala,  
5. 40.

S. 27:—पुष्पितायाः इ, इ, त, ए; इ, उ, न, त, ए (ननरय; नजजरग).  
= III, III, SIS, ISS; III, SIS, I, SIS, ISS. See  
Piṅgala, 5. 41.

S. 28:—यमवतीः त, उ, त, न, औ; र, उ, त, र, ए (रजरजग; जरजरग).  
= SIS, ISI, SIS, I, SIS; IS, ISI, SIS, IS, ISS.  
This is almost the same as यमवती of Piṅgala, 5. 42;  
only our यमवती has one long letter more, at the end  
of the odd lines.

S. 29:—शिक्षाः 13 व, प; 14 व, प. व=II; प=ISS. Thus 13 व  
and प make 28 short letters followed by a long one in the odd  
lines. Similarly 14 व and प make 30 short letters followed by a long  
one, in the even lines. See Piṅgala, 5. 43. Piṅgala mentions also  
Khañjā which is just the reverse of Śikhā; our author does not  
mention it. The commentator too is silent about it.

### ADHYĀYA III.

This Adhyāya defines the Sanskrit Mātrā Vṛttas belonging to the Vaitāliya and the Mātrāsamaka groups. Every metre of these

groups consists of four lines, though in the case of the former group, the lines are not all of the same kind and length. So the author begins with the Adhikāra Sūtra 'pāde' and gives the definition of a single line, mentioning at the same time the partial difference in the structure of some, wherever it exists.

S. 2-4:—These Sūtras give the composition of the concluding portion of all the lines of Vaitāliya, Aupacchandāsika and Āpātalikā. It is respectively क, औ (SI, SIS); क, ए (SI, ISS); and त, ए (SIS, ISS). The mss. do not contain the illustration of Vaitāliya and the definition of Āpātalikā. I have reconstructed the latter by pure guesswork. See Piṅgala, 4. 32-34.

S. 5 and 6:—These two Sūtras give the composition of the remaining portion of the lines, both odd and even, of the three metres to which this portion is common. Thus Sūtra 5 lays down that the odd lines shall have 6 Mātrās ( ए तः :—ए is a short letter and also 1 Mātrā ) in it. But these short letters or Mātrās must always be used in pairs, and not singly or in groups of 3 or 5. In effect this restriction means that the 2nd and 3rd, 4th and 5th and 6th and 7th Mātrās at the commencement of a line must not be combined into a long letter. Sūtra 6 enjoins that the even lines shall have 8 short letters or Mātrās in this portion at the commencement of the lines of these metres. But in any case 8 short letters *in succession* shall not be employed there. According to Piṅgala, 6 short letters in succession are to be avoided in the case of the even lines, and Kedāra agrees with Piṅgala. The word द्वन्द्वम् in the last Sūtra is also to be understood here, so that the restriction equally applies to all lines whether odd or even. See Piṅgala, 4. 34-36.

S. 7 :—Supply वैतालीयं from S. 2, दोषे from S. 5 and युजोः from S. 6 in this Sūtra. So that it means: If in this portion, a long letter ( ए ) occurs after the 3rd Mātrā ( त्रिणः ) in the even lines, so as to combine the 4th and the 5th Mātrās, a Vaitāliya is called Prācyavṛtti. See Piṅgala, 4. 37, whose wording is slightly different.

S. 8:—A Vaitāliya is called Udācyavṛtti, when a long letter is employed after the 1st Mātrā ( एण् ) in the odd lines. Supply वैतालीयं (S. 2), दोषे (S. 5) and ए (S. 7) in this Sūtra to complete the sense. Compare Piṅgala, 4. 38.

S. 9:—If both the characteristics mentioned in S. 7 and 8 are simultaneously found in a Vaitālyta, it is called Pravṛtṭaka. See Piṅgala, 4. 39.

S. 10-17:—These 8 Sūtras define the six metres belonging to the Mātrāsamaka group. For all these see Piṅgala, 4. 42-47. The order in which these six are defined is different with different authors according to their own convenience.

S. 10-12:—There are four (दी) Caturmātra groups (१ = a Caturmātra group; see above I. 25) in each of the four lines of the Mātrāsamaka. Out of these four, the first (दण्) must not be of the उ (ISI) type and the third (दिण्) must be of the ई (IIS) type. The condition about the 1st Caturmātra is actually mentioned by our author though it seems to be implied by Piṅgala and others. Piṅgala's commentator Halāyudha supplies श्लेषे परेण युद्धं न सक्तम् in the definition of Mātrāsamaka too which would mean that the उ group (ISI) which 'combines the even Mātrā with its successor into a long letter' is to be avoided in all the four places of the Mātrāsamaka line. The restriction about the 1st group is, however, mentioned by writers on Prakrit metres as well, like Hemacandra (3.65) and author of Kavidarpaṇa (II. 19.) As regards the restriction about the third group, Piṅgala and others simply lay down that the 9th Mātrā shall always be represented by a short letter. But when we remember that when the 3rd group happens to be of any kind other than ई, the metre is either called Upacitrā or Vānavāsikā (see Sūtras 13-14 below), we must conclude with our author that in Mātrāsamaka, it must be of ई (IIS) type only.

S. 13-14:—When the third group of the Mātrāsamaka is either च (SS) or ऋ (SII), it is called Upacitrā; but it is called Vānavāsikā, when the third group is either उ (ISI) or लि (I,III).

S. 15-16:—The mss. drop the illustration of Vānavāsikā and the definition as well as the Bhāṣya of Viśloka. I have reconstructed the 15th Sūtra and its Bhāṣya from the Bhāṣya on S. 16. If the 2nd group in the Mātrāsamaka is उ (ISI) or लि (I,III), it is called Viśloka. If the 3rd group in the Viśloka is either ई (IIS), or उ (ISI) or लि (I,III), it is called चित्रा. In S. 16, we must supply दण्णि from S. 15, as is shown by च. पुनि = प, उ, न, इ, (IIS, ISI, I,III). See Piṅgala, 4. 43-46.

S. 17:—When the four Caturmātra groups are of any kind whatsoever without restriction, we get a Pādākulaka, which word literally means 'a promiscuous mixture of the lines' of Mātrāsamaka and its derivative metres. See Piṅgala, 4. 47,

S. 18:—The wording of the Sūtra is not clear to me even with the help of the Bhāṣya. Gītyāryā has four lines, each containing 16 Mātrās, all of which are represented by short letters. Jayadeva definitely states that hiṣ Acaladhṛti is the Gītyāryā of Piṅgala. Similarly Śikhā and Cūlikā (S. 19-20) of Piṅgala and our author are called Anaṅgakriḍā and Atirucirā by Jayadeva and Kedāra.

S. 19:—When the Gītyāryā has the first two lines containing all long and the last two containing all short letters, it is called Viśikhā; this is called (Saumyā) Śikhā by Piṅgala, 4 51. Our author does not mention the opposite case which according to Piṅgala is (Jyotiḥ) Śikhā. Both Gītyāryā and Viśikhā are Sama Catuṣpadīs; whereas the Śikhā mentioned above at 2. 28 by our author is an Ardhasama Catuṣpadī. To bring out this distinction, our author calls one Śikhā and the other Viśikhā. Piṅgala, however, has kept the same name Śikhā for both, at 4. 49-52 and 5. 43-44.

S. 20:—Cūlikā is a Dvipadī and that too of the Ardhasama type. It has been mentioned here probably under the influence of Piṅgala. Besides, the name Viśikhā which suggests an improvement over Piṅgala, must have reminded him of the Śikhā, with which the Cūlikā is connected. The Cūlikā Dvipadī is equal to a half of the Śikhā mentioned above at 2. 28. Compare Piṅgala, 4. 52. Had convenience been the consideration for our author, he would have defined it just after Śikhā at 2. 28 above.

S. 21-24—The author now reverts to the Mātrāsama Catuṣpadīs, and so he wants us to supply the word ऋ from S. 10 above. Nṛtyagati has five Caturmātras in each of its four lines. Out of these, the 3rd and the 5th must consist of two long letters each, and the Yati must occur at the end of the 3rd Gaṇa. This definition of Nṛtyagati entirely agrees with that of Hemacandra (cf. N. S. P. ed. of 1912, p. 26 b, lines 2-3). But our author's illustration is rather unsatisfactory as regards the Yati in particular. In Hemacandra's illustration the Yati is quite obvious so much so

that a line actually looks as if it consists of two separate parts of three and two Gaṇas.

S. 25-28:—Naṭacarāṇa is a metre of four lines, each having three Caturmātras of which the last two must always consist of two long letters each. Here the Yati must come after the second Gaṇa. The definition of Naṭacarāṇa too agrees wholly with that of Hemacandra, p. 26a, last line. Our author's illustration in this case is very unsatisfactory. It does not observe the condition of the Yati, nor even of the last two Caturmātras consisting of all long letters. Hemacandra's illustration is quite appropriate, the Yati clearly dividing the line into two parts of 2 and 1 Gaṇas each. In effect Naṭacarāṇa is only a shortened form of Nrtyagati, one Gaṇa being removed from each of the two parts separated by the Yati in every line.

Both these metres have a clear association with dancing, as their names and composition show. No other writer on metres, so far as I know, has mentioned these two metres. Hemacandra and our author agree in that the metres are Sanskrit metres. Both mention them at the end of the Mātrāsamaka group. They do not seem to belong to the South, at least to Kannada prosody, since Jayakīrti does not mention them in the midst of other unusual Sanskrit metres which he defines at the end of ch. 6 (of. JBBRAS. 1945, p. 12).

#### ADHYĀYA IV.

This chapter treats of the three groups of the Viṣama Vṛttas (the metres of dissimilar lines) namely, the Udgatā group, the Padacaturūrdhva (called Dāmāvarā in a very artificial manner by our author) group and the Anuṣṭubh Vaktra group. Our author has defined these groups in the descending order of the number of letters occurring in the first lines of their representatives. Thus the first line of Udgatā contains 13 letters, that of Dāmāvarā contains 8, and that of Anuṣṭubh Vaktra also contain 8 letters. The latter however, is considered as smaller than the former because, while the remaining three lines of the Anuṣṭubh Vaktra contain only 8 letters each, those of the Dāmāvarā contain 12, 16 and 20 letters in succession. It may be noted that these three groups are

treated in just the opposite order by Piṅgala, the Vaktra group being the first and the Udgatā group being the last.

The Anuṣṭubh Vaktra group of metres is treated as a group of Viṣama Vṛttas even though all the lines in a stanza in these metres contain 8 letters only and not less nor more; because, the construction of these lines is not uniform, ample freedom being allowed in the use of short and long letters except at certain places. Vaktra is really the class name of the metres of this group, Anuṣṭubh merely signifying that they belong to the Anuṣṭubh class out of the 26 classes of Vṛttas beginning with Gāyatrī and ending with Utkṛti. It is in this Anuṣṭubh class alone that we find some metres which, through they contain the same number of letters in all their lines, must nevertheless be considered as Viṣama Vṛttas owing to the dissimilar structure of their lines. This Anuṣṭubh Vaktra is indeed a legacy from the Vedic Anuṣṭubh and appears to have been carefully preserved in Sanskrit prosody through its preponderating use in the epics and in the Smṛtis. It has been spared the methodizing touch of the Sanskrit prosodists owing to its exalted position (being used in the epics and Smṛtis), though it has not wholly escaped it. Another legacy from the Vedic metres was the Triṣṭubh Jagatī stanzas which are seen in the epics and other post-vedic literature of that same period. The lines of these metres as a rule contain the same number of letters, but their structure in respect of the use of short and long letters is absolutely free as in the case of their Vedic ancestors. But these have finally yielded to the persistent labours of the classical prosodist and have almost disappeared from the field. Yet even they have left a trace of their once important position and freedom in the metres known as the Upajātis. Indeed the freedom that is allowed here is restricted only to the first letter, which may be either short or long. But it is clear that at one time such free metres belonging to the Triṣṭubh or Jagatī class were allowed under the name Upajāti as is seen from the remarks of Kedāra, VR. 3. 4 and Hemacandra, 3. 117. See also Halāyudha on Piṅgala, 6. 17.

These three groups of Viṣama Vṛttas stand mutually distinguished. We have already seen above the nature of the Vaktra group. The Dāmāvārā group is characterized by the preponderance of short letters, the last two letters alone being long; while the third or the Udgatā group has lines containing a definite number

of letters, of course mutually unequal, which must follow a given order of succession of short and long syllables.

S. 1:—उद्गतः The four lines respectively contain 1 पठनठ (IIS, ISI, I, ISI); 2 नक्षत्रौ (I, III; ISI, SIS); 3 सहरई (SII, III, IS, IIS); 4 पठपठम (IIS, ISI, IIS, ISI, S). Piṅgala and others call this metre by the feminine name Udgatā; of Piṅgala, 5. 25.

S. 2:—सौरभकः If the 3rd line of the Udgata were to contain तक्षई (SIS, III, S, IIS), it is called Saurabhaka; cf. Piṅgala, 5. 26.

S. 3:—ललिताः If the 3rd line of the Udgata contains हृहृई (i.e. III, III, IIS, IIS) it is called Lalitā. Piṅgala and Kedāra call it by the neuter name Lalitā; cf. Piṅgala, 5. 27.

S. 4:—उपस्थितप्रचुपितः The four lines of this metre respectively contain कषऔषए (SSS, II, SIS, ISI, ISS) वक्रुपरए (II, SII, IIS, IS, ISS,) वक्षई (II, III, I, IIS,) and हृहृरईम (III, III, III, IS, IIS, S,. See Piṅgala, 5. 28. Some five letters are missing in the mss. from the first line of the illustration. Similarly, the word *yathā* at the end of the third line is redundant.

S. 5-6:—वर्धमान and शुद्धविराटर्धमः If the 3rd line of Upasthitapracupita is doubled in length, it is called Vardhamāna and if the same line contains वईनऔ (SS, IIS, I, SIS) instead of its usual letter-groups, it is called Śuddhvirāṭarṣabha.

S. 7-10:—These Sūtras define the Padaçaturūrdhva or Dāmāvārā group of metres. As a matter of fact, our author has chosen only one of the metres (namely Āpiḍa, of this group which has four different varieties according to Piṅgala) and given its 24 varieties obtained by a mutual exchange of places among its four lines. In the Padaçaturūrdhva there is a complete freedom of choice of short and long letters in the lines, their number alone being restricted, according to Piṅgala and others; but in the other three, namely Āpiḍa and Pratyāpiḍa of two kinds, there is no such freedom and all letters must be short, except the first or the last two which must be long, as the case may be; see Piṅgala, 5. 20-23. Our author has chosen only the Āpiḍa from these as said above whose lines contain respectively 8, 12, 16 and 20 letters all of which must be short, except the last two which must be long. Our author lays down an additional condition that at the end of every four

letters there will be a Yati. By a mutual exchange of places among the four lines, 24 different varieties are obtained whose names according to our author will be obtained by putting together the last letters of the four lines in succession (5. 10).

Piṅgala mentions only three varieties of the Padacaturūrdhva (see Halāyudha on Piṅgala 5.24) according as the 1st line exchanges its place with the 2nd, the 3rd and the 4th lines, whose names he gives as Mañjarī (or Kalikā), Lavalī and Amṛtadhārā. Kedāra and others however, maintain that these three varieties are to be admitted only in the case of the Āpīḍa but not in that of the others. Jayakīrtī, who calls the Āpīḍa and the two Pratyāpīḍas by the names Padaruci, Anupadaruci and Atipadaruci, admits the varieties, namely Kalikā Lavalī and Amṛtadhārā in each of the three.

S. 11-12:—The author now takes up the Viṣama Vṛttas belonging to the Anuṣṭubh class. The general name of these metres is Vaktra. See the introductory note on the three groups of the Viṣama Vṛttas.

S. 13-14:—The two Caturmātras i.e. ष and ३ (SII and III) must not occur at the beginning of the lines of a Vaktra. This means ultimately that the 2nd the 3rd letters must not be short simultaneously. This condition is expressed in other words by Piṅgala, 5.10, who says that the ष (IIS) and the ३ (III) Gaṇas must be avoided after the first letter in every line. Similarly the group ३ (ISS) must always be used after the 4th letter (दी३) in all lines of the Vaktra.

S. 15-16:—These Sūtras tell us that if the ३ (ISI) group is used after the 4th letter in the even lines of a Vaktra, it is called Pathyā Vaktra; but it is called Viparītapathyā Vaktra when this same group is used at the same place in the odd lines.

• S. 17-18:—A Vaktra is called Capalā when the ३ (III) group is substituted for the usual ३ (ISS) group only in the odd lines after the 4th letter. It is called Vipulā when the 7th letter is short in the even lines. Eventually, Vipulā is the same as Pathyā-Vaktra which has the ३ (ISI) group after the 4th letter in its even lines. But the alternative name is introduced here by the author, following the lead of Piṅgala, in order to mention Saitava's view about Vipulā. Saitava thinks that a Vaktra is called Vipulā, when short letter is

substituted for the long one which is employed at the 7th place in *all* its lines (for, the group ळ i. e., ISS is laid down after the 4th letter according to 4. 14 above), and not merely in the even lines as held by our author and Piṅgala. The name Vipulā has also to be introduced by our author, for defining what he calls Vimalā, Vikalā, Viralā and Viśālā, but which are respectively described by Piṅgala and his followers as Bha-vipulā, Ta-vipulā and Na-vipulā.

S. 20:—The Vipulā will have the letters ञ, क, र and ण substituted in place of the middle letter i. e., उ of its name, according as the ञ (SII), ञ (SSI), ञ (SIS) and र (III) Gaṇas are respectively substituted for the usual र (ISS) in *all* the lines of Vaktra after the 4th letter. We must supply दीर्घः from S. 14.

The difference between the Capalā and Na-vipulā i. e., Viśālā is that in Capalā, र (III) occurs after the 4th letter only in the odd lines, while in the Na-vipulā i. e., Viśālā of our author, it so occurs in *all* the four lines. Like the other Gaṇas, even क or र (SSS or IIS) may occur after the 4th letter in a line; see Halāyudha on Piṅgala 5. 19, and Hemacandra, (N. S. P. edi.) p. 22a, line 7ff. There is a slight difference, however, between our Vimalā etc. and the Bhavipulā etc., of Piṅgala and Hemacandra. The Gaṇas that are introduced after the 4th letters are to be for *all* the four lines according to our author; while they are to be introduced only in the odd lines, in the opinion of Piṅgala and Hemacandra, the even lines having the र (ISI) or their ञनन after the fourth letter.

It will thus be seen, that when all the different varieties of the Vaktra are taken together, there is complete freedom of employing a short or long letter at any place in the line as there was in the Vedic Anuṣṭubh; but there is only one important exception in the case of letters at the 2nd and the 3rd place. It is that two short letters must not be *simultaneously* used at the 2nd and the 3rd places in a line as said above in S. 13 and at Piṅgala, 5.10. Piṅgala 5.11 also lays down that in the case of even lines, a Ragaṇa (SIS) must not be used after the 1st letter. This in effect means that if the 2nd letter is long, the 3rd also must be long. This restriction however, is not admitted either by our author or by Hemacandra, or even by Kedāra and Jayadeva.

---

## ADHYĀYA V.

S. 1 and 2:—Any metre belonging to any class from Gāyatrī to Utkṛti is called Samāna when long and short letters occur in regular succession in its lines. ॠ is a group of a long and a short letter (IS). On the other hand, any metre from the above mentioned classes i.e., from Gāyatrī to Utkṛti is called Pramāṇa when short and long letters are similarly employed. ॡ is a group of a short and a long letter (IS). Piṅgala and his successors apply the names Samāna and Pramāṇa—rather their feminine forms—to metres of the Anuṣṭubh class only and not to others. Our author stands alone in extending their application to all metres which belong to the classes beginning with Gāyatrī and ending with Utkṛti. Naturally therefore, he defines them here at the beginning of the treatment of metres belonging to the Gāyatrī and the other classes; whereas Piṅgala and others define them on the first occasion when they treat the metres of the Anuṣṭubh class, i.e., when they define the Anuṣṭubh Vaktra at the beginning of the Viṣama Vṛttas. See Piṅgala, 5. 6-8. The actual metre chosen for illustration by our commentator is of the Jagatī class.

S. 3:—A metre containing any other arrangement of short and long letters in its lines and belonging to one of the classes from Gāyatrī to Utkṛti is called Vitāna. Piṅgala and others restrict this name too, to metres of the Anuṣṭubh class, while our author extends it to all the classes, like Samāna and Pramāṇa. As a matter of fact, Vitāna is a common name which is well applicable to all the following metres defined in chs. 5-7 of our work, since Vitāna is evidently intended to be a metre of similar lines of same length by our author and also by Piṅgala, even though the latter defines it at the commencement of his chapter on Viṣama Vṛttas. The illustration of our commentator is the metre of the Jagatī class having ॠ (SIS), ॡ (III), ॢ (SII) and ॣ (IIS) groups in each of its lines.

S. 4:—This is an Adhikāra Sūtra. The four metres defined in S. 5-8 belong to the Gāyatrī Class.

S. 5:—सुमुखाः A line has ॢ, ॣ = SSI, ISS. See Piṅgala, 6.2.

S. 6:—सुमुखाः A line has ॣ, ॣ = III, ISS. Piṅgala does not

'define the metre. Kedāra, 3.8 and Hemacandra, 2.39 call it शशिचदना; while Bharata, 16.34; 32. 80 calls it मकरशीर्षा.

S. 7:—सूचिसुखी : A line has ष, आ (IIS, SSS). This is unknown to Piṅgala and Kedāra; Hemacandra, 2.50 calls it सूचिसुखी.

S. 8:—शिक्षिणी : A line has च, आ (ISS, SSS). Unknown to Piṅgala and Kedāra; but defined by Hemacandra, 2. 51.

S. 9:—Adhikāra Sūtra.

S. 10:—कुमारलक्षिता : A line has ष, ई, म (ISI, IIS, S); See Piṅgala, 6. 3.

S. 11:—वज्रक :—A line has ष, ई, म, (SSI, IIS, S). Unknown to Piṅgala and Kedāra, but defined as अमरमाला by Hemacandra, 2.57 and Bharata, 16.20 and 32. 107.

S. 13:—माणवकक्रीडितक : A line has म, ई, म, ई (S, IIS, S, IIS). Compare Piṅgala, 6. 4.

S. 14:—विजयपद : A line has म, ई, न, ए ( S, IIS, I, ISS ); see Piṅgala, 6. 5.

S. 16:—भुवगसिद्युच्यता : A line has ष, इ, न, आ, (II, III, I, SSS). Compare Piṅgala, 6. 7.

S. 17:—तरङ्गवती : A line has ल, औ, न, औ (SI, SIS, I, SIS) The mss. actually read तानौ, but the scheme contained in the illustration is as given by me, so I have conjectured the reading लीनौ. This too is unknown to Piṅgala and Kedāra. Hemacandra, 2. 106 defines it under the name कामिनी.

S. 19:—शुद्धविराट् : A line has म, अ, ष, औ (S, SSI, ISI, SIS). Compare Piṅgala, 6. 9.

S. 20:—पणव : A line has म, अ, इ, आ (S, SSI, III, SSS). Compare Piṅgala, 6. 10.

S. 21:—उपस्थिता : A line has ष, उ, न, औ ( SSI, ISI, I, SIS). Compare Piṅgala, 6. 14.

S. 22:—रुक्मवती : A line has ल, ए, ल, ए, ( SI, ISS, SI, ISS ); compare Piṅgala, 6. 11.

S. 23:—मत्ता : A line has म, आ, ह, ए (S, SSS, <sup>१</sup>III, ISS). Compare Piṅgala, 6. 13.

S. 25:—इन्द्रवज्रा : A line has ञ, अ, र, ए (SSI, SSI, IS, ISS). Compare Piṅgala, 6. 15.

S. 26:—उपेन्द्रवज्रा : A line has ष, अ, र, ए (ISI, SSI, <sup>१</sup>IS, ISS). Compare Piṅgala, 6. 16.

S. 27:—इन्द्रमाला : Another name of the Upajāti: Māndāramarandacampū (Kāvya-mālā ed. 1895, p. 8, line 7) calls it उपेन्द्रमाला; but every other writer that I know of calls it उपजाति.

S. 28:—दोषक : A line has ल, उ, ष, ए (SI, ISI, ISI, ISS). Compare Piṅgala, 6. 13.

S. 29:—रथोद्धता : A line has त, इ, ल, औ (SIS, III, SI, <sup>१</sup>SIS). Compare Piṅgala, 6. 22.

S. 30:—रथागता : A line has त, इ, ल, ए (SIS, III, SI, ISS). Compare Piṅgala, 6. 23.

S. 31:—रथेनी : A line has त, उ, ल, औ (SIS, ISI, SI, SIS). Compare Piṅgala, 6. 25.

S. 32:—सुमदिका : A line has व, इ, ष, औ (II, III, ISI, SIS). Unknown to Piṅgala. Hemacandra, 2. 143 calls it मदिका.

S. 33:—सारिणी : A line has र, इ, त, औ (IS, III, SIS, SIS). Unknown to Piṅgala and Kedāra. Hemacandra's सारिणी, 2. 153, is slightly different at the beginning. It has सजयलग (IIS, ISI, ISS, IS).

S. 34:—दृग्ता : A line has व, इ, ह, आ (II, III, III, SSS). Compare Piṅgala, 6. 24.

S. 35:—शालिनी : A line has म, आ, ल, य, ए (S, SSS, SI, SS, ISS). The Yati is after the 4th letter (दी). See Piṅgala, 6. 19.

S. 36:—वातोर्मिमाला : A line has म, आ, व, य, ए (S, SSS, II, SS, ISS). The Yati is the same as in the last metre. Piṅgala calls this metre वातोर्मि (6. 20) and mentions another Yati after the 7th letter.

S. 37:—अमरविलसिता : A line has य, अ, इ, ई (SS, SSI, III, IIS). The Yati is after the 4th letter as before. See Piṅgala, 6. 21.

## ADHYĀYA VI.

S. 1:—This is the Adhikāra Sūtra for S. 2-12.

S. 2:—भुजङ्गप्रयातः : A line has as many ष (ISS) groups as would make it a Jagati line i. e., a line of 12 letters. See Piṅgala, 6. 37.

S. 3:—तोटकः : A line has similarly the ष (IIS) groups. See Piṅgala, 6. 31.

S. 4:—वंशस्थाः : A line has ष, झ, ष, औ (ISI, SSI, ISI, SIS). See Piṅgala, 6. 28.

S. 5:—इन्द्रवंशाः : A line has झ, झ, ष, औ (SSI, SSI, ISI, SIS). See Piṅgala, 6. 29.

S. 6:—वंशमालाः : This is the name given to a metre whose lines are made up promiscuously by the mixture of the last two metres. See above इन्द्रमाला, which is similarly made up by a mixture of इन्द्रवंशा and उपेन्द्रवंशा. Both इन्द्रमाला and वंशमाला are names formed with the help of the word-elements (i. e. इन्द्र and वंश) common to the names of metres from whose mixture they are made. Older writers like Piṅgala and Hemacandra, give another significant name उपजाति, 'a secondary i. e. a mixed class' to both these metres and also to other metres which are similarly formed by a mixture of lines of metres whose length is the same. See Halāyudha on Piṅgala, 6. 17 and Hemacandra, (N. S. P. ed.) 1912, p. 7a, lines 10-20. A mixture of lines different even in length in addition to structure is allowed by Hemacandra; but the view of Piṅgala and Kedāra is doubtful.

S. 7:—प्रमिताक्षराः : A line has ष, उ, ष, ई (IIS, ISI, IIS, IIS). See Piṅgala, 6.39.

S. 8:—वनमालिनीः : A line has ह, उ, स, ए (III, ISI, SII, ISS). See Piṅgala, 6.43, who, along with Kedāra and Hemacandra, calls it वनमालिनी.

S. 9:—द्रुतविजम्बिताः : A line has ह, ऋ, स, औ (III, SII, SII, SIS). See Piṅgala, 6.30.

S. 10:—वैश्वदेवीः : A line has क, आ, च, ए (SSS, SSS, ISS, ISS). The Yati occurs after the 5th letter (इ). See Piṅgala, 6.41.

S. 11:—जलोद्धतगतिः : A line has ष, ई, ष, ई (ISI, IIS, ISI, IIS). The Yati occurs after the 6th letter (इ). See Piṅgala 6.33.

S. 12:—पुटाः A line has ह, इ, क, ए (III, III, SSS, ISS). The Yati occurs after the 8th letter (६). See Piṅgala, 6.32.

S. 14:—प्रद्विषीः A line has क, इ, न, त, ए (SSS, III, I, SIS, ISS). The Yati is after the 3rd letter (दि). See Piṅgala, 7.1.

S. 15:—चिराः A line has न, औ, व, ई, न, औ (I, SIS, II, IIS, I, SIS). The Yati is after the 4th letter (री). See Piṅgala 7.2.

S. 16:—मत्तमचूरः A line has म, आ, ल, ए, न, ए (S, SSS, SI, ISS, I, ISS). The Yati is after the 4th letter as before. See Piṅgala 7.3.

S. 18:—वसन्ततिलकः A line has म, औ, न, ई, प, ए (S, SIS, I, IIS, ISS, ISS). See Piṅgala, 7, 8-10. Our author does not mention the other names of this metre, namely, सिद्धोन्नता and उद्द्विषी given to it respectively by Kāśyapa and Saitava.

S. 19:—असंबंधाः A line has क, अ, इ, व, आ, (SSS, SSI, III, II, SSS). The Yati is after the 5th letter (दु). See Piṅgala, 7.5.

S. 20:—अपराजिताः A line has इ, इ, म, उ, न, औ (III, III, S, ISI, I, SIS). The Yati is after the 7th letter (दृ). See Piṅgala 7.6.

S. 21:—एज्वरमणीयः A line has ष, ई, त, व, ए (ISI, IIS, SIS, II, ISS). The Yati is after the 7th letter. Unknown to Piṅgala and Kedāra; Hemacandra, 2.229, however, defines it.

S. 22:—प्रहरणकलिका(त): A line has व, इ, र, इ, न, ई (II, III, IS, III, I, IIS). The Yati is after the 7th letter. Piṅgala, 7.7 calls it प्रहरणकलिता. The wording of the Sūtra and the Bhāṣya supports the name प्रहरणकलिका, which is also supported by Kedāra; but the illustration seems to support प्रहरणकलिता.

S. 24:—चन्द्रवर्माः A line has व, इ, व, इ, व, ई (II, III, II; III, II, IIS). This is known as चन्द्रवर्ती to Piṅgala, 7. 11 and as षडिकला to Hemacandra, 2. 243 and Kedāra. No fixed Yati.

S. 25:—मालाः If the चन्द्रवर्मा, which evidently has no Yati, happens to have a Yati regularly after the 6th letter (दृ) in all lines, it is called माला. See Piṅgala, 7. 12.

S. 26:—मणिगणनिकराः The same चन्द्रवर्मा is called मणिगणनिकरा if it has the regular Yati after the 8th letter (दृ) See Piṅgala, 7. 13.

S. 27:—मालिनी : A line has व, इ, ए, अ, य, ए (II, III, IS, SSI, SS, ISS). The Yati is after the 8th letter. See Piṅgala, 7. 14. The illustration is from Bhāsa's Pratiṅgāyugandharāyaṇa, II 3.

S. 29:—रुक्मा : A line has ल, इ, इ, इ, व, ई (SIS, III, III, III, I, IIS). Unknown to Piṅgala and Kedāra; Hemacandra, 2. 283 however, defines it. The illustration seems to be from some drama. It mentions नन्द and वरदक्षि, the latter announcing his arrival to the former through the Pratihāri (Lalanā). The stanza seems to have been composed by the commentator as it contains the name of the metre artificially introduced; it is therefore possible that the author may have quoted it from his own drama.

S. 30:—वैलिता : A line has प, ई, इ, इ, म, आ (IIS, IIS, III, III, S, SSS). The Yati is after the 6th letter. Even this metre is known only to Hemacandra, 2. 284.

S. 31:—शुभनगजविलसिता : A line has स, औ, व, इ, व, ई (SII, SIS, II, III, II, IIS). The Yati is after the 7th letter ( इ ). See Piṅgala, 7. 15.

S. 32:—कोमलता : A line has क, अ, व, आ, इ, औ (SSS, SSI, II, SSS, IS, SIS). The Yati is twice, once after the 4th and then after the next 5th letter. This metre too is known to Hemacandra, 2. 285, alone.

S. 34:—पृथ्वी : A line contains व, ई, ए, ई, र, औ (ISI, IIS, ISI, IIS, IS, SIS). The Yati is mentioned after the 8th letter by Piṅgala, 7. 17 and his successors, but not by our author.

S. 35:—हरिणी : A line has व, इ, क, अ, स, औ (II, III, SSS, SSI, SII, SIS). The Yati is after the 6th letter. Compare Piṅgala, 7. 16 who mentions a second Yati after the 10th letter.

S. 36:—शिशुरिणी : A line has र, आ, स, इ, स, ई (IS, SSS, SII, III, SSI, IIS). The Yati is after the 4th letter. See Piṅgala, 7. 20.

S. 37:—मन्दाक्रान्ता : A line has क, ऋ, इ, अ, य, ए (SSS, SII, III, SSI, SS, ISS). The Yati is after the 4th letter and then after the next 6th letter. See Piṅgala, 7. 19.

S. 38:—वंशपत्रपतितः : A line has ल, उ, स, उ, इ, ई (SI, ISI, SII, ISI, III, IIS). The Yati is after the 10th letter. See Piṅgala, 7. 18.

## ADHYĀYA VII.

S. 1:—This is an Adhikāra Sūtra for Sūtras 2-3.

S. 2:—कुसुमितलतावेल्लिताः A line has म, आ, ल, इ, न, अ, य, ए (S, SSS, SI, III, I, SSI, SS, ISS). The Yati occurs twice, first after the 5th letter and then after the next 6th. See Piṅgala, 7.21.

S. 3:—वाचालकायीः A line has क, औ, स, ए, त, औ (SSS, SIS, SII, ISS, SIS, SIS). The Yati is after the 11th letter. This metre is unknown to Piṅgala and Kedāra. Hemacandra, 2.300 calls it कायी, but says that others call it वाचालकायी.

S. 5:—शार्दूलवक्रोडितः A line has म, अ, न, औ, व, ए, त, औ (S, SSI, I, SIS, II, ISS, SIS, SIS). The Yati is after the 12th letter. See Piṅgala, 7.22.

S. 6:—वसुवेगाः A line has म, अ, र, उ, प, इ, न, औ (S, SSI, IS, ISI, IS, III, I, SIS). The Yati is after the 12th letter. This too is unknown to Piṅgala and Kedāra. Hemacandra, 2.322 alone defines it.

S. 7:—माधवीलताः A line has क, औ, ल, इ, म, ई, न, औ (SSS, SIS, SI, III, S, IIS, I, SIS). The Yati is after the 7th letter. Like the last, this is known only to Hemacandra, 2.232.

S. 9:—दीपिकागच्छाः A line has स, इ, च, इ, ह, ल, औ (SII, III, ISS, III, III, SI, SIS). The Yati is after the 3rd letter and then again after the 6th thereafter. This also is known only to Hemacandra, 2.343.

S. 10:—सुवदनाः A line has य, अ, श, इ, व, आ, न, ई (SS, SSI, SSI, III, II, SSS, I, IIS). The Yati is after the 7th letter. See Piṅgala, 7. 23.

S. 12:—स्रग्धराः A line has क, औ, म, इ, ह, अ, य, ए (SSS, SIS, S, III, III, SSI, SS, ISS). The Yati is after every 7th letter. See Piṅgala, 7. 25. Even though ह can be supplied here from S. 10, still the author has used the word ह्र in this Sūtra to indicate that the अनुवृत्ति is allowed in metres belonging to the same class only and that it does not go beyond it. Thus our ह्र can be supplied in the next Sūtra which belongs to the same Adhikāra i. e., Prakṛti.

S. 13:—क्यागतिः A line has न, औ, न, अ, ह, न, उ, स, औ (S, SIS, I,



S. 29:—अपवाह : A line has क, इ, व, इ, व, इ, व, इ, व, आ (SSS, III, II, III, II, III, II, III, II, SSS). The Yati is after the 13th letter (वौ). See Piṅgala, 7. 32.

S. 50:—आपीठ : A line has स, इ, व, इ, व, अ, व, इ, व, ई (SII, III, II, III, SS, SSI, II III, II, IIS). The Yati is after the 13th letter. Unknown to Piṅgala and Kedāra. Hemacandra, 2. 378, alone knows it but calls it आपीठ and mentions the Yati after the 14th letter.

S. 31:—सुव्रजविजृम्भितः : A line has क, आ, वा, इ, इ, इ, म, उ, न, औ (SSS, SSS, SSI, III, III, III, S, ISI, I, SIS). The Yati is after the 8th and then after the next 11th letter. See Piṅgala, 7, 31.

S. 32:—अतिच्छन्दस् : When 8 more short letters (न अष्ट) are added in the middle of the सुव्रजविजृम्भित, it is called अतिच्छन्दस्. This metre is mentioned only by our author so far as I know. कर्म of Hemacandra, 2. 386 contains 9 additional short letters in the middle of the सुव्रजविजृम्भित.

S. 33:—चण्डवृष्टिप्रयातः : A line has ह, इ and (seven) त groups. (III, III and SIS seven times repeated). The number of the SIS groups must be such as would make the metre अतिच्छन्दस् i. e., a metre whose line is longer than that of the उक्त्यति class of metres; and that number is seven. See Piṅgala, 7. 34, who mentions other kinds of the Daṇḍakas too. Our author is silent about them.

S. 34:—गाथा is a common name applied to any other irregular metre which cannot be included under any of the classes discussed so far (अप्रसिद्धा). The illustration is a stanza in the Triṣṭubh class, without any definite order of short and long letters and with one letter more in its first line. The stanza is from the Mahābhārata and is also quoted for the same purpose by Rāmcandra Kavibhāratī on Vṛttaratnākara, 5. 15. Piṅgala 8. 1, Kedāra 5. 15, and Hemacandra, 7. 73, all agree about the name Gāthā which is thus applicable to any irregular metre which has been sanctioned by ancient use in popular or epic poetry. The derivative meaning of the word Gāthā is 'what is sung' (from *gai* to sing).

---

## ADHYĀYA VIII.

This Adhyāya treats of the six Pratyayas, namely, Prastāra, Naṣṭa, Uddiṣṭa, Lagakriyā, Samkhyā and 'Adhvan. I have explained these in full in my introduction to chapters V-VI of Virahānka's Vṛttajāṭisamuccaya, JBBRAS., Vol. 18, 1932.



# I INDEX OF VERSES.

## श्लोकसूची

अनुबद्धकटी	4. 15.	धनमासगृहे	2. 24.
अपाङ्कतकटी	6. 11.	चापनतद्भूःसम-	7. 23.
अप्रच्युष्यमभि-	6. 29.	विद्यानामुपचित्रा-	3. 13.
अप्रियमप्यव-	5. 14.	चित्रं संविन्दे व	7. 12
अन्नसंस्कट-	5. 31.	अगति जरादृक्	2. 15.
अम्बानमाला	5. 27.	अगति प्राधान्यं	5. 7.
अलकावकीर्ण-	6. 7.	अगति सह जरा	5. 16.
अलं क्लृप्ता सरामः	5. 10.	जात्यक्षा न जय-	4. 4.
अवनि तलप्रति-	7. 20.	ज्ञानं अन्तुनां	6. 10.
अशितपनं	6. 8.	तथा मकरकेतुमान्	5. 33.
असावस्तं यातो	6. 36.	दिशि अयातरिति	3. 18.
अहिनकुलमुखं	6. 22.	दृष्ट्वेन्दुं प्रथम-	4. 5.
इह भवति हि	5. 32.	देवैर्द्रोपि न दुःख-	2. 14.
उपगतसलिलानां	6. 12.	द्वयानि भद्रे	6. 4.
उपचित्रकमक्षय-	2. 17.	धनं प्रदानेन	1. 11.
उपेन्द्रैर्जायुध-	5. 26.	धर्मतीर्थकर-	5. 30.
ऊर्मिकोलक्षिरीरुहा-	4. 16.	नटचरणादपि	3. 25.
एलकयान-	7. 14.	नर्दति मद्शिखा	7. 33.
एवं प्रोचुः क्रौञ्च-	7. 32.	न पात्रे प्रविष्ट्यन्	6. 2.
कनकभूषण-	6. 9.	नर उन्नतं कुल-	4. 1.
कन्याबन्धा	5. 37.	नरपतिविरहित-	2. 28.
कमलदलनखा	6. 20.	नवभिर्द्वा रैरश्रुधि-	2. 2.
कमलक्षिरघ-	6. 25.	न स्मरति किं	2. 16.
कर्णनिहितप्रियङ्गुः	2. 13.	नागे नागे नागे	7. 31.
कालविधाविब-	5. 28.	नारीणां ना नखिन-	5. 23.
कुहानदधिष्ठितमो-	3. 16.	नीवीशैथिल्य-	7. 3.
कुहानमोहितान्धी-	3. 15.	पण्डितजनसहवाचो-	7. 9.
कृतकर्मविपाक	2. 23.	परिमण्डलाक्षि-	4. 2.
कुम्भार्धे शर्म-	6. 16.	पर्जन्यः पशितं	7. 5.
केयूरमुखीभिर्भू-	2. 20.	पक्षितबलिभिः कीर्णं	6. 35.
गच्छति पुरः	2. 4.	पत्न्यकुसुमपलाश-	3. 17.
गुह्यतरमविषम-	6. 26.	पाणिपाद्मस्तका-	5. 1.
गूढस्नायु-	6. 19.	पादकरीदराचर-	7. 16.
गोवृषभायताक्ष-	6. 31.	पादैः श्लिष्टैर्वना-	3. 4.

पुष्पितनानानोकह-	5. 22.	रुक्षपिण्डाप्रदद्याना	4. 17.
पृथुपीनमृदुभोगी	4. 18.	रीगश्चापवर्हिस्त्र-	4. 6.
प्रक्षीणपूर्वाङ्गित-	5. 25.	रोगा बहुप्रकारा	2. 11.
प्रलम्बहनुद्युक्त	3. 9.	ललितानि सुस्मित-	4. 3.
प्रस्वेद्विन्दुवित्रं	2. 12.	लोकान्परत्रोत्तम	6. 6.
फुल्लैः पुष्पैः कोमल-	6. 32.	वज्रं तृणमपि स्यात्	5. 11.
बलवाजयवान्	6. 30.	वरवृषकगति	6. 24.
बहुविधनयवावा	4. 9.	वरहृयगज	3. 20.
बहुस्पर्शं चारुमुखं	4. 20.	बलिभिः पकितै	2. 29.
भुजान्तुष्यं केकराक्षं	4. 20.	बाक्यं मे शृणु	7. 29.
भूया सुद्विविरा-	5. 19.	विद्युन्मद्वन्मत्ता	7. 21.
भोगवती	2. 18.	विपुलाक्षिभुज-	3. 7.
भ्रमरपरमृतो	2. 26.	विपुलगमधौत-	2. 10.
मण्डलं शिव-	4. 19.	विमुकुलिताया	5. 6.
मत्स्युतिप्रभाव	5. 2.	विद्यालज्जघना	3. 8.
मद्योन्मत्तान् पथि	6. 37.	वीरंविमलं	7. 27.
मध्यदिनीरुहा	6. 5.	वेदया दृश्या	7. 27.
मम हृदयखरभिर्जं	6. 27.	व्याघ्रीव जरा	5. 21.
मर्त्येषु कदाचित्	3. 21.	व्याधिसहस्र-	6. 38.
मात्रा सुसुप्तान्	3. 12.	शीर्णा बीजेन तुल्या	7. 9.
मानवपतिरुद-	7. 30.	श्येनमृप्रत्रायसा	5. 31.
मानवा भवन्त्य-	2. 27.	श्रीमण्डपेषु मणि-	6. 18.
मासुष्यं चलजल-	6. 14.	संसारोऽद्वारस्वं	2. 5.
मान्धातैलययाति	7. 6.	सर्वजगत्स्फयात-	5. 13.
मूको बवः प्रवृत्ति	7. 13.	सर्वभाषविधि-	5. 29.
मृद्वङ्गी मृदुकलिता	5. 20.	सिंहमस्त्य	4. 14.
यजिनगीतं	7. 26.	सिंहस्कन्धः	3. 19.
यतिस्तुतस्त्रि दश-	6. 15.	सिराविततमस्त्रि-	6. 34.
यत्नः सुमहान्	1. 11.	सुरेन्द्रैः पूजयेभ्यः	5. 8.
यवाहमैश्वर्य-	2. 22.	सुलक्षणविशिष्टः	6. 21.
यमपाथिवप्रथित-	2. 21.	सुलक्ष्माङ्गुलिबन्धन-	3. 3.
यश्चानेकभवाञ्जितो	7. 17.	सेनापतिपुत्री	5. 5.
या तराङ्गुदुसुदो	5. 17.	स्निग्धच्छवि	4. 20.
या हस्वा वै	5. 36.	स्फारितास्ये	4. 20.
युधिष्ठिरो धर्ममयो	7. 34.	स्त्रबन्मदजलाङ्ग-	7. 19.
यैवा कुष्ठविकार-	7. 24.	स्वदत्तोमिन्दवार-	6. 3.
यौ भूतधम्य-	1. 1.	स्वशिष्टमपर-	2. 25.
राज्यं यत्कालं	7. 2.		

## II INDEX OF NAMES OF METRES.

### वृत्तनामसूची

अतिच्छन्दस्	7. 32	चपला भार्या	2. 11-13
अपरबन्ध	2. 25	चपला बन्ध	4. 17
अपराजिता	6. 20	चित्रपद	5. 14
अपवाह	7. 29	चित्रा	3. 16
अश्वलम्बित	7. 20	चूलिका	3. 20
असंवाधा	6. 19	जलौद्धतगति	6. 11
आठ्यानिष्ठा	2. 22	तनुमध्या	5. 5
आपातलिका	3. 3	तन्वी	7. 23
आपील	7. 30	तरंगवती	5. 17
आर्या	2. 1-8	तोटक	6. 3
आर्यागीति	2. 15	दामावारा	4. 7
इन्द्रमाळा	5. 27	दीपार्चिः	7. 17
इन्द्रवंशा	6. 5	दीपिकाशिखा	7. 3
इन्द्रवज्रा	5. 25	दीपक	5. 28
उदीच्यवृत्ति	3. 8	द्रुतमध्य	2. 18
उद्गद	4. 1	द्रुतबिलम्बित	6. 9
उपचित्रक	2. 17	नटचरण	3. 25
उपचित्रा	3. 13	नृत्यगति	3. 21
उपस्थितप्रचुपित	4. 4	पणव	5. 20
उपस्थिता	5. 21	पथ्या भार्या	2. 9
उपेन्द्रवज्रा	5. 26	पथ्या बन्ध	4. 15
औपच्छन्दसिक	3. 4	पादकुलक	3. 17
कथागति	7. 13	पुटा	6. 12
कुमारललिता	5. 10	पुष्पिताम्र	2. 26
कुसुमितलतावेल्लिता	7. 2	पृथ्वी	6. 34
कुसुमती	2. 21	प्रमाण	5. 2
कौमललता	6. 32	प्रमिताक्षरा	6. 7
कौबपद	7. 26	प्रवृत्तक	3. 9
कलितक	2. 16	प्रहरणकलिका	6. 22
गाथा	7. 34	प्रहर्षिणी	6. 14
गीति	2. 14	प्राच्यवृत्ति	3. 7
गीतार्या	3. 18	भद्रक	7. 16
वृत्तवृत्तिप्रयात	7. 33	भद्रविराट्	2. 20
वृत्तवर्मा	6. 24	भुजगशिखुसृत	5. 16

भुजङ्गप्रयात	6. 2	वितान	5. 3
भुजङ्गविभ्रमिता	7. 31	विपरीतवक्त्र	4. 16
भ्रम (विकल्पिता)	5. 37	विपुला आर्या	2. 10
भणिकाभनिकरा	6. 26	विपुला वक्त्र	4. 18
भक्तमयूर	6. 16	विभ्रमगति	7. 24
भक्ता	5. 23	विमला वक्त्र	4. 20
भक्तश्रीषा	7. 21	विरळा वक्त्र	4. 20
भक्तशान्त	6. 37	विद्याला वक्त्र	4. 20
भाणवकम्पीडितक	5. 13	विशिक्षा	3. 19
भाषासमक	3. 10	विश्लोक	3. 15
भाषणीकता	7. 7	वृन्ता	5. 34
भालमारिणी	2. 23	वृन्दारक	7. 19
भाला	6. 25	वृषभगजविलसिता	6. 31
भालिनी	6. 27	वेगवती	2. 19
भुक्तुलिता	5. 6	वैल्लिता	6. 30
यमवती	2. 27	वैतालीय	3. 2
रबीरता	5. 29	वैश्वदेवी	6. 10
राजरमणीय	6. 21	शास्त्रविक्रीडित	7. 5
रक्षमवती	5. 22	शालिनी	5. 35
रुचिरा	6. 15	शिक्षण्डिनी	5. 8
ललना	6. 29	शिक्षारिणी	6. 36
ललितविक्रम	7. 14	शिक्षा	2. 28
लल्लिता	4. 3	शुद्धविराट	5. 19
वंकपत्रपतित	6. 38	शुद्धविराटवर्षभ	5. 19
वंशमात्म	6. 6	श्येनी	5. 31
वंशस्था	6. 4	समान	5. 1
वक्त्र	4. 12-14	सारिणी	5. 33
वज्रक	5. 11	सुभक्षिका	5. 32
वनमासिनी	6. 8	सुवन्दना	7. 10
वर्षमान	4. 5	सूत्रिसुखी	5. 7
वसन्ततिलक	6. 18	सौरभक	4. 2
वाचालकाशी	7. 3	सुगंधरा	7. 12
वातोर्मिमाला	5. 36	स्वागता	5. 30
वाववासिका	3. 14	हंसपदा	7. 27
वायुवेगा	7. 6	हरिणी	6. 35
विकल्पवक्त्र	4. 20	हरिणीप्लुता	2. 23

# भारतीय ज्ञानपीठ काशी के प्रकाशन

## [ प्राकृत ग्रन्थ ]

१. महाबन्ध [महाभवल सिद्धाम्त]—प्रथम भाग, हिन्दी अनुवाद सहित । सम्पादक—पं. सुप्रेमचन्द्र दिवाकर न्यायतीर्थ । मूल्य १२]

२. करलक्षण [सामुद्रिक शास्त्र]—हिन्दी अनुवाद सहित । इस्तेरखा विज्ञानका नवीन ग्रन्थ । सम्पादक—प्रो. प्रफुल्लचन्द्र मोदी एम. ए. । मूल्य १]

## [ संस्कृत ग्रन्थ ]

३. मदनपराजय—मूल ग्रन्थकार कवि नागदेव । भाषानुवाद तथा ७८ पृष्ठ की विस्तृत प्रस्तावना सहित । जिनदेव के द्वारा काम के पराजय का सरस सुन्दर रूपक । सम्पादक और अनुवादक—प्रो. राजकुमार साहित्याचार्य, बडौत । मूल्य ८]

४. कण्डप्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची—मूढबिद्री के जैनमठ, जैन सिद्धाम्त भवन, सिद्धाम्तवसदि भादि, जैनमठ कारकल, मूढबिद्री के अन्य ग्रन्थ भंडार तथा अलियूर के ग्रन्थ भंडारों के ३५३० अमूल्य ताडपत्रीय ग्रन्थों का सविवरण परिचय । सम्पादक—पं० के० भुजबली शास्त्री । मूल्य १३]

५. न्यायविनिश्चय विवरण [प्रथम भाग]—अकलङ्कदेव कृत न्यायविनिश्चय की वादिराज सूरिचित व्याख्या । विस्तृत हिन्दी प्रस्तावना में इस भाग के ज्ञातव्य विषयों का हिन्दी में विषय परिचय है । श्याद्वाद, सप्तभंगी आदि के सम्बन्ध में भ्रान्त धारणाओं की आलोचना की गई है । सम्पादक—प्रो. महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य । बकी साहज पृष्ठ सं. ६०० । मूल्य १५]

६. तरवार्थवृत्ति—भुतसागर सूरिचित टीका । हिन्दी सार सहित । १०१ पृष्ठ की विस्तृत प्रस्तावना में तरव, तत्वाधिगम के उपाय, सम्यग्दर्शन, अभ्यास नियतिवाद, श्याद्वाद, सप्तभंगी आदि का नूतन दृष्टि से विवेचन । सम्पादक—प्रो. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य । बकी साहज पृष्ठ सं. ६५० । मूल्य १६]

## [ हिन्दी ग्रन्थ ]

७. मुक्तिदूत [उपन्यास]—अञ्जना-पवनजय की पुण्यगाथा । सर्वत्र प्रशंसित, गद्य का उत्कृष्ट नमूना । लेखक—वीरेन्द्रकुमार एम. ए. । मूल्य ४।।।]

८. पद्यचिह्न [संस्मरण]—स्वर्गाया बहिन के पवित्र संस्मरण और युगचिह्लेखन । संस्कृति और कला की स्वाभाविक झलक, मनोरम भाषा और मनोहर शैली । मर्मज्ञों द्वारा प्रशंसित । मूल्य २]

९. दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ—चौसठ लौकिक धार्मिक और ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह । भाषा सरल और रोचक है । व्याख्यान तथा प्रवचनों में उदाहरण देने योग्य । मूल्य ३]

१०. शोरो-शायरी [उर्दू के सर्वोत्तम १५०० शेर और १९० मउम]—लेखक—अयोध्याप्रसाद गोयलीय । प्राचीन और वर्तमान कवियों में सर्वप्रधान लोकप्रिय ३१ कलाकारों के मर्मस्पर्शी पद्यों का संकलन और उर्दू कविता की गतिविधि का आलोचनात्मक परिचय ।

सुरुचिपूर्ण सुव्रण । कपड़े की जिल्द । पृष्ठ सं. ६४० । मूल्य ८)

११. आधुनिक जैन कवि—वर्तमान कवियों का कलात्मक परिचय और सुन्दर रचनाएँ सम्पादक—रमा जैन । मूल्य ३।।)

१२. जैनशासन—जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन करानेवाली सुन्दर रचना । लेखक—पं. सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर न्यायतीर्थ । मूल्य ४।-)

१३. कुन्दकुन्द्याचार्य के तीन रत्न—मूल लेखक गोपालदास जीवाभाई ष्टेळ । अनुवादक—पं. गोभाचन्द्र जी भारिल्ल न्यायतीर्थ । भा० कुन्दकुन्द के पंचास्तिकाय, प्रवचनसार और समर्थसार इन तीन महान् ग्रन्थों का संक्षिप्त और सरल भाषा में विषयपरिचय । मूल्य २)

१४. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—[हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास तथा परिचय] लेखक—कामताप्रसाद जैन । मूल्य २।।=)

१५. पादशास्य तर्कशास्त्र [प्रथम भाग] भिक्षु जगदीश काश्यप एम. ए. । मूल्य ६) प्रचारार्थ पुस्तकें मँगाने वाले महानुभावों को विशेष सुविधा ।

✽

## ज्ञानोदय [श्रमण संस्कृति का अग्रदूत मासिक]

व्यक्ति स्वातन्त्र्यमूलक श्रमण संस्कृति के सम्वेश द्वारा श्रम, श्रम और सम—स्वावलम्बन शान्ति और समता का सार्वजनीन उद्घोषण करने वाला मासिक पत्र

सम्पादक—मुनि शान्तिशायर, पं. फूलचन्द्र शिवाभक्तशास्त्री, प्रो. महेश्वरकुमार न्यायाचार्य

मूल्य ६) वार्षिक

✽

एक प्रति ।=)

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस सिटी









